एम.ए. हिन्दी M.A. (HINDI)

पाठ्यक्रम संख्या Hin-203

दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा निदेशालय

Directorate of Distance & Online Education

जम्मू विश्वविद्यालय

University of Jammu

जम्मू

Jammu

पाठ्य सामग्री

STUDY MATERIAL

एम. ए. (हिन्दी)

M.A. (HINDI)

2024 ONWARDS

पाठ्यक्रम संख्या. 203	सत्र द्वितीय
COURSE CODE 203	**SEMESTER-IInd**
इकाई संख्या–1 से 4	आलेख संख्या. 1 –14
UNIT - 1 to 4	**LESSON No. 1-14**

Dr. Anju Sharma
Course Co-ordinator

स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी कविता

इस पाठ्य सामग्री का रचना स्वत्व/प्रकाशनाधिकार दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा निदेशालय, जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू–180006 के पास सुरक्षित है।

Printed and publised on behalf of the Directorate of Distance and Online Education, University of Jammu, Jammu by the Director, DD&OE, University of Jammu, Jammu

COURSE CONTRIBUTORS

1	**Prof. Anju Sharma** Dept. of Hindi, DD&OE, University of Jammu.	**Lesson Nos. 1 to 4**
2	**Retd. Prof. (Dr.) Parmeshwari Sharma** Department of Hindi University of Jammu.	**Lesson Nos. 5 to 8**
3	**Ms. Preeti Sharma** Ph. D. Research Scholar, JRF Department of Hindi University of Jammu.	**Lesson Nos. 9 to 11**
4	**Prof. (Retd.) Parvinder Kour** Department of Hindi University of Jammu.	**Lesson Nos. 12 to 14**

CONTENT EDITING / PROOF READING

Prof. Anju Sharma

* All rights reserve. No Part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DD&OE, University of Jammu.

* The Script writer shall be responsible for the lesson / script submitted to the DD&OE and any plagiarism shall be his/her entire responsbility.

Printed at :- Rohini Printers / 2024 / 200 Books

Syllabus of Master Degree Programme in Hindi Under Non CBCS

Semester–2nd

Course Code : HIN-203 *Title :* **Swatantrata Purav Hindi Kavita**
Credits : 6 **Maximum Mark : 100**
Duration of Examination : 3 Hrs. **(a) Internal = 20**
(b) External = 80

Syllabus for the Examination to be held in 2022, 2023 & 2024 May

इकाई–एक

मैथिलीशरण गुप्त : साकेत (केवल नवम् सर्ग)

जयशंकर प्रसाद : कामायनी (चिन्ता और आनन्द, कुल दो सर्ग)

सुमित्रानन्दन पन्त : रश्मिबंध (मौन निमंत्रण, नौका विहार, हिमाद्रि, ताज, कुल चार कविताएँ)

महादेवी वर्मा : संधिनी (छाया की आँख मिचौनी, दिया क्यों जीवन का वरदान, मैं नीर भरी दुख की बदली, बीन भी हूँ तुम्हारी रागिनी, मधुर–मधुर मेरे दीपक जल)।

इकाई–दो

रामकाव्य परम्परा में साकेत का स्थान।

साकेत का महाकाव्यत्व।

उर्मिला का विरह वर्णन।

मैथिलीशरण गुप्त : नारी अस्मिता।

इकाई–तीन

कामायनी में दार्शनिकता।

कामायनी का महाकाव्यत्व।

कामायनी में इतिहास और कल्पना।

कामायनी का रूपक तत्व।

इकाई–चार

पंत का प्रकृति चित्रण।

पंत की दार्शनिकता।

पंत का काव्य शिल्प।

महादेवी वर्मा की गीति योजना।

महादेवी वर्मा की विरह भावना।

महादेवी वर्मा की काव्य कला।

प्रश्न पत्र का प्रारूप

कोर्स कोड Hin-203 के प्रश्नपत्र का प्रारूप इस प्रकार होगा

मुख्य परीक्षा (External Exam) — **अंक = 80**, **समय = तीन घण्टा**

(क)	इकाई एक में निर्धारित प्रत्येक पुस्तक में से एक–एक सप्रसंग व्याख्या पूछी जायेगी। विद्यार्थी को कोई तीन सप्रसंग व्याख्याएँ करनी होंगी।	6×3=18
(ख)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ तीन दीर्घ उत्तरापेक्षी प्रश्न।	10×3=30
(ग)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ तीन लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न।	6×3=18
(घ)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ तीन अति लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न।	3×3=9
(ङ)	पाँच वस्तुनिष्ठ विकल्परहित प्रश्न पूछे जायेंगे।	1×5=5

विषय सूची

आलेख संख्या	आलेख	पृष्ठ संख्या
1.	रामकाव्य परम्परा में साकेत का स्थान	4
2.	साकेत का महाकाव्यत्व	13
3.	उर्मिला का विरह–वर्णन	25
4.	मैथिलीशरण गुप्त : नारी अस्मिता	33
5.	कामायनी में दार्शनिकता	48
6.	कामायनी का महाकाव्यत्व	58
7.	कामायनी में इतिहास और कल्पना	68
8.	कामायनी में रूपक तत्व	79
9.	पंत का प्रकृति–चित्रण	92
10.	सुमित्रानंदन पंत की दार्शनिकता	106
11.	सुमित्रानंदन पंत का काव्य–शिल्प	117
12.	महादेवी वर्मा की गीति विशेषताएँ	129
13.	महादेवी वर्मा की विरहानुभूति	139
14.	महादेवी वर्मा की काव्य कला	148

रामकाव्य परम्परा में साकेत का स्थान

1.0 रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 रामकाव्य परम्परा

1.4 रामकाव्य परम्परा में साकेत का स्थान

1.5 निष्कर्ष

1.6 कठिन शब्द

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.8 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 उद्देश्य

इस आलेख के अध्ययनोपरांत आप–

- रामकाव्य परम्परा से अवगत होंगे।
- रामकाव्य परम्परा में साकेत का स्थान जान पायेंगे।
- रामकाव्य परम्परा में साकेत की मौलिकता से अवगत होंगे।

1.2 प्रस्तावना

'साकेत' का प्रकाशन हिन्दी–साहित्य की एक महत्वपूर्ण घटना है। एक तो रामभक्ति परम्परा की यह एक अतीव सुन्दर रचना है, दूसरे गुप्त जी की पचास वर्षों की काव्य–साधना की यह प्रतिनिधि रचना है और तीसरे हिन्दी साहित्य में प्रथम श्रेणी का महाकाव्य है। इसका महत्व ऐतिहासिक होने के साथ–साथ काव्यात्मक दृष्टि से भी है।

1.3 रामकाव्य परम्परा

राम कथा का मूल स्रोत वाल्मीकि कृत 'रामायण' है। इस 'रामायण' के पश्चात् महाभारत के विभिन्न पर्वों में राम कथा मिलती है जिसका आधार वाल्मीकि 'रामायण' ही है। इसके उपरान्त बौद्ध–जातक ग्रंथ 'दशरथ जातक' में भी राम कथा है लेकिन यह ग्रंथ 'वाल्मीकि रामायण' जैसा उत्कृष्ट नहीं है। जैन ग्रन्थों जैसे विमल सूरि के 'परम चरिउ, पंप रामायण, तथा गुणभद्र कृत 'उत्तर रामायण' में भी राम कथा का वर्णन है। विभिन्न पुराणों जैसे श्रीमद्भागवत पुराण, विष्णु पुराण, पद्म पुराण, ब्रह्मांण्ड पुराण, नृसिंह पुराण आदि में भी रामकथा है। पुराणों की राम कथा में घटनाओं के वर्णन पर अधिक बल है, उनमें कथात्मक सौंदर्य कम है।

वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त कुछ अन्य रामायण ग्रंथ भी मिलते हैं जैसे अध्यात्म रामायण, महारामायण, आनन्द रामायण, अद्भुत रामायण, भुशुण्डि रामायण आदि। इन ग्रंथों में वर्णित रामकथा में सजीवता है। यद्यपि कुछ ग्रंथों में उत्तना विस्तार नहीं है जितना वाल्मीकि रामायण में है।

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की परम्परा में महाकाव्यों के अतिरिक्त नाटक भी मिलते हैं जिनमें रामकथा का वर्णन है। इन नाटकों और महाकाव्यों में कालिदास का 'रघुवंश', दामोदर कृत 'हनुमन्नाटक', भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित', आदि विशेष उल्लेखनीय है।

हिन्दी में राम–काव्य की विस्तृत परम्परा मिलती है। हिन्दी में तुलसी ही राम काव्य के प्रमुख कवि हैं। तुलसी के समकालीन कवियों में से मुनिलाल कृत 'रामप्रकाश' काव्य मिलता है, जो रीतिशास्त्र के आधार पर लिखा गया है। महाकवि केशव ने 'रामचन्द्रिका' नामक महाकाव्य की रचना की है, जिसमें काव्य–कौशल का तो प्राधान्य है, किन्तु चरित्र–चित्रण एवं प्रबन्धात्मकता की उपेक्षा की गई है। सेनापति ने भी अपने कवित्त रत्नाकर में चौथी एवं पाँचवी तरंगों के अन्तर्गत रामायण एवं राम–रसायन का वर्णन किया है। तुलसी के समकालीन कवियों के उपरान्त हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक' मिलता है, जिसमें राम–भक्ति का ही सुन्दर विवेचन मिलता है। संवाद रूप में प्राणचन्द्र चौहान कृत 'रामायण महानाटक' में उत्कृष्ट काव्य–सौन्दर्य के दर्शन नहीं होते। लालदास कृत 'अवध–विलास' में राम–सीता की विविध लीलाओं के चित्रण की प्रधानता है तथा राम कथा का भी वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् जानकी रसिक शरण कृत 'अवधी सागर' ग्रन्थ मिलता है जिसमें श्रीकृष्ण की ही भाँति श्रीराम एवं सीता के रास, नृत्य, वन विहार आदि का सरस वर्णन किया गया है। तदनन्तर कलानिधि कृत 'रामायण– सूचनिका' ग्रन्थ मिलता है जिसमें रामायण की प्रमुख घटनाओं का विवरणात्मक उल्लेख किया गया है। इसके उपरान्त गुरु गोविन्दसिंह कृत 'गोविन्द रामायण', सहजराम कृत 'रघुवंश दीपक' श्रीधर कृत 'रामचरित्र' नवलसिंह उपनाम रामानुजदास शरण कृत 'रामचन्द्र–विलास' नामक प्रसिद्ध राम–काव्य मिलते हैं। इसके साथ ही रीवां नरेश महराज विश्वनाथसिंह कृत 'रामकाव्य सम्बन्धी कितने ही ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें से 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक, 'संगीत रघुनन्दन, 'आनन्द रामायण', 'रामचन्द्र

की सवारी', 'गीता रघुनन्दन', 'रामायण' आदि प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी में प्रेमसखी, कुशल मिश्र, रामचरणदास, मधुसूदनदास, गंगाप्रसाद व्यास, सर्वसुखशरण, भगवानदास खत्री, गंगाराम, रामगोपाल, परमेश्वरीदास, गणेश, रामगुलाम द्विवेदी, जनक लाडिली शरण, कितने ही हिन्दी के ऐसे छोटे–छोटे कवि मिलते हैं, जिन्होंने राम–कथा सम्बन्धी काव्य लिखे हैं। और जिनमें रामायण के कतिपय अंशों का सुन्दर वर्णन मिलता है। इनमें से मधुसूदनदास कृत 'रामाश्वमेघ' ग्रन्थ तुलसी कृत 'रामचरितमानस' के आदर्श पर ही लिखा गया है जो अन्य सभी ग्रन्थों की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

आधुनिक युग में भी राम कथा सम्बन्धी कितने ही काव्यों का प्रणयन हुआ है, जिनमें से रामचरित उपाध्याय कृत 'रामचरित चिन्तामणि' रामनाथ ज्योतिषी कृत 'श्रीरामचन्द्रोदय' अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत 'वैदेही वनवास', डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र कृत 'साकेत–सन्त', हरदयालु सिंह 'रावण महाकाव्य', बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' कृत 'उर्मिला' काव्य प्रसिद्ध है।

रामकथा संबंधी उपर्युक्त ग्रंथों से वाल्मीकि कृत 'रामायण' और तुलसी कृत 'रामचरितमानस' ही श्रेष्ठ ग्रंथ हैं। वाल्मीकि से पहले रामकथा लोक में प्रचलित थी जिसमें राम का स्वरूप एक वीर नायक का था। वाल्मीकि रामायण में भी राम वीरता की साक्षात मूर्ति हैं। तुलसी के प्रसद्धि ग्रंथ रामचरितमानस में राम ब्रह्म के रूप में चित्रित किये गए हैं जो धरती पर लीला करने, भक्तों की रक्षा करने और दुष्टों का दलन करने के लिए अवतिरत हुए हैं। मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में राम मानव हैं जो अपने गुणों के कारण देवत्व को प्राप्त कर गए हैं। राष्ट्रकवि दिनकर का कहना है कि महाकाव्य यह व्यंजित करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहां तक प्रगति कर सका है। युग–बोध की दृष्टि से साकेत, वाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस से कथा और विचार इन दोनों धरातलों पर कुछ भिन्न हो जाता है।

1.4 रामकाव्य परम्परा में साकेत का स्थान

'साकेत' आधुनिक युग का महाकाव्य है। नवीन विचारधारा और दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण उसमें राम–कथा का स्वरूप भिन्न है। 'साकेत' में कवि ने अनेक मौलिक उद्‌भावनाएँ की हैं। इसमें ईश्वर की मानवता के स्थान पर मानव की ईश्वरता का निरूपण किया गया है जो दार्शनिक दृष्टि से आधुनिक युग की वस्तु है।

मानव का उत्कर्ष साकेत में पहली बार अपनी चरम सीमा पर ईश्वर के समकक्ष लाकर रखा गया है। यह – मध्ययुग में सम्भव न था। उन्होंने राम के आर्यत्व की प्रतिष्ठा करने वाला इस पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाने वाला और भूतल पर नव वैभव कराने वाला महापुरुष चित्रित किया है –

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।

साकेत में कवि ने लोक–सामान्य जीवन का चित्रण किया है, राज–प्रसाद के निवासियों को सामान्य व्यक्तियों की तरह प्रस्तुत किया है, लक्ष्मण–उर्मिला, राम–सीता आदि के संलापों में मानवोचित साधारणता दिखाई है। 'साकेत' के राजपुरुषों का पारिवारिक जीवन साधारण गृहस्थ के जीवन की तरह उकेरा गया है। लक्ष्मण–उर्मिला की विनोद–वार्ता, जिसमें नव–दम्पति के हास–परिहास, एकान्त विलास और दाम्पत्य जीवन की मधुर झाँकी दी गई है, उनका विरह, कैकेयी का वात्सल्य, मंथरा की कुचाल, दशरथ की चाटुकारिता और पत्नी–भय, लक्ष्मण का आक्रोश, भरत–मांडवी का त्यागमय जीवन–सभी चित्र भारतीय कौटुम्बिक जीवन का साधारण पर मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करते हैं। इस चित्रण में एक ओर माधुर्यपूर्ण भाव हैं, तो दूसरी ओर कटुता और मर्यादाहीनता के निदर्शक आचरण भी–

अरे, मातृत्व तू अब भी जताती,
ठसक किसको भरत की है बताती।
भरत को मार डालूँ और तुझको।

यही नहीं लक्ष्मण कैकेयी की 'अनायी की जनी और पिता को 'दस्युजा को दस तक कह डालते हैं। इस प्रकार 'साकेत' का जीवन–विवरण हमारे साधारण पारिवारिक जीवन से मिलता–जुलता दिखाया गया है।

सीता के हाथों में चरखा और तकली के साथ खुरपी और कुदाल देकर गुप्तजी ने आधुनिक युग के अनुरूप हमें श्रम का महत्त्व बताया है और स्वावलम्बन का पाठ सिखाया है–

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ।
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रमवारि बिन्दू फल स्वास्थ्य शुक्ति फलती हूँ।
अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ।

मध्यकाल में व्यक्ति की सत्ता और उसके महत्त्व के सम्बन्ध में हमारी दृष्टि बहुत संकुचित थी, मान – महत्त्व की परिभाषा सीमित थी। हम व्यक्ति को महत्त्व न देकर उसके पद, कुल और सामाजिक मर्यादा को महत्त्व देते थे। यह कारण है कि कवियों का उर्मिला की ओर ध्यान ही न गया। गुप्त जी ने उर्मिला को अपने काव्य की नायिका बनाकर मानव महत्त्व के सम्बन्ध में नए युग की धारणा को, नए व्यक्तिवाद और समत्व के आदर्श को स्वीकार किया। निश्चय ही सामाजिक चिन्तन के क्षेत्र में यह एक क्रांतिकारी दृष्टि है।

गांधी और उनकी विचारधारा से प्रभावित होना गुप्त जी के लिए स्वाभाविक ही था। उन्होंने 'साकेत' में कई स्थलों पर गांधीवादी विचारों और आन्दोलनों का उल्लेख किया है। तकली और चरखे को अपनाने के साथ–साथ आदिवासियों की शिक्षा के विषय में सीता प्रयत्नशील है–

आओ, हम कातें – बुने ज्ञान की लय में

गुप्तजी ने किसानों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए गांधी के विचारों की पुष्टि की है –

हम राज्य लिये मरते हैं।
सच्चा राज्य परन्तु हमारे कृषक ही करते हैं।

राम–वन–गमन के अवसर पर अयोध्यावासियों को राम के सम्मुख सत्याग्रह करते हुए दिखाना भी गांधी जी के प्रभाव का परिचायक है –

जाओं जा सको रौंद हम को यहाँ

'साकेत' के प्रणयन के समय भारत परतन्त्र था और प्रत्येक भारतवासी की उत्कट कामना थी कि वह स्वतन्त्रता प्राप्त करे, परतन्त्रता की उस स्थिति में हर भारतवासी का हृदय क्षुब्ध था। सीता को भारतलक्ष्मी का रूप दे, कवि ने भारतवासियों के इसी क्षोभ को निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया है–

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में
सिन्धु पार वह बिलख रही है अपने मन में

सामाजिक क्रान्तदर्शिता के साथ–साथ साहित्यिक क्रान्तदर्शिता भी साकेत में पायी जाती है। गुप्त जी ने साहित्यिक रूढ़ियों और परम्पराओं का तिरस्कार कर अपनी रचना को एक नया रूप प्रदान किया है। ऊर्मिला और भरत को नायकत्व प्रदान कर उन्होंने पहली बार महाकाव्य की वीररस–प्रधान पद्धति की उपेक्षा की और इतिवृत्तात्मक शैली को छोड़कर गीति शैली को अपनाया। राम और सीता के स्थान पर साधु भरत और विरहिनी ऊर्मिला के जीवन–सूत्रों से कथा–तन्तु का निर्माण साहित्य के इतिहास में एक प्रवर्तन माना जायेगा। साकेत को केन्द्र में रखने और उसी के चारों और घटनाओं को सूत्र – बद्ध करने के फलस्वरूप भी साकेत का काव्यरूप परम्परागत न होकर भी नया हो गया है।

चरित्र – सृष्टि की दृष्टि से भी साकेत में पर्याप्त नवीनता है। उसके चरित्र न तो वाल्मीकि रामायण के पात्रों की भाँति लोक–प्रतिनिधि और वीर हैं और न वे तुलसी के 'रामचरित मानस' की भाँति उदात्त और आदर्श। वे सामान्य हैं, उदाहरण के लिए उर्मिला और लक्ष्मण का प्रथम चित्र साधारण दम्पत्ति के रूप में चित्रित किया गया है। साकेत के पात्रों में सबल व्यक्तित्व के साथ–साथ साधारण दुर्बलताएँ भी हैं। इन्हीं के कारण हम लक्ष्मण को अमर्यादित भाषा बोलते हुए, दशरथ को करुणा विलाप करते हुए और ऊर्मिला को चंचल मनोवृत्ति के वशीभूत हो निम्न शब्द कहते हुए पाते हैं–

मेरे चपल यौवन बाल !
अचल अंचल में पड़ा सो, मचल कर मत साल।

'साकेत' की रचना ही उपेक्षिता नारी पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने और उनके साथ किए गए अन्याय का निराकरण करने के लिए हुई थी। वाल्मीकि और तुलसी दोनों ने कैकेयी की दुष्टता और कुटिलता को

बढ़ा–चढ़ाकर चित्रित किया था। उसे निर्दोष सिद्ध करने के लिए जो उपाय उन्होंने अपनाए थे, वे भी अत्यन्त स्थूल थे। उदाहरण के लिए, तुलसी ने 'मानस' में सरस्वती द्वारा मन्थरा की मति फेरने का उल्लेख किया है–

उन्होंने कैकेयी को ग्लानि प्रकट करते हुए भी दिखाया है –

गरी गलानि कुटिल कैकेयी

पर ये कवि कैकेयी को कुटिलता और क्रूरता के कलंक से मुक्त नहीं कर सके। गुप्त जी ने उसे निष्कलंक बनाने के लिए न तो किसी ब्राह्मण के शाप की कल्पना की और न सरस्वती का ही सहारा लिया। उन्होंने उसके हृदय में मातृत्व, दैन्य, वात्सल्य, स्वाभिमान और पश्चाताप का भाव दिखा कर उसके प्रति पाठक की सहानुभूति जगाने की भरसक चेष्टा की है और वह उसमें सफल भी हुए हैं। कैकेयी का चरित्र अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है। कवि ने यह दिखाने की चेष्टा की है कि उसने जो कुछ किया उसके पीछे साम्राज्य–लिप्सा का भाव नहीं था, अपितु पुत्र के कल्याण की चिन्ता भाव था। उन्होंने मनोविज्ञान का सहारा लेकर उसके हृदय में उठने वाले तूफान का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है–

भरत से सुत पर भी सन्देह
बुलाया तक न उसे जो गेह

गुप्त जी की मन्थरा भी इस अशुभ कार्य के लिए उत्तरदायी है, परन्तु जिस रूप में उसके प्रभाव को चित्रित किया है वह निश्चय ही तुलसी द्वारा दिये गये कारण से अधिक मनोवैज्ञानिक है –

गयी दासी पर उसकी बात
दे गयी मानों कुछ आघात।

इतना ही नहीं कवि ने उसे पश्चाताप–विदग्ध दिखाकर उसके अपराध और कलंक कालिमा का प्रक्षालन कर कैकेयी के चरित्र को पावन और पुनीत बना दिया है –

युग–युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
रघुकुल में भी थी एक अभागी रानी।
निज जन्म–जन्म में सुने जीवन यह मेरा–
धिक्कार उसे था महास्वार्थ ने घेरा

कवि की यह उद्‌भावना सर्वथा नवीन और मौलिक है। राजा दशरथ से वर मांगने का प्रसंग जिस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, वह भी कैकेयी के दोष को कम कर देता है। 'साकेत में कैकेयी स्वयं वर नहीं मांगती अपितु राजा दशरथ द्वारा स्मरण दिलाये जाने पर ही वह वर मांगती है और राजा के सम्मुख राम वनवास का प्रस्ताव रखती है। उर्मिला के उपेक्षित चरित्र को भी कवि ने आलोक प्रदान कर अपने हृदय की

संवेदनशीलता का परिचय दिया है। वह केवल उर्मिला के त्याग और बलिदान का ही चित्रण नहीं करता, उसके वियोगिनी रूप के प्रति ही हमारे हृदय में करुणा भाव नहीं जगाता, अपितु उसके चरित्र के अन्य पक्षों पर भी प्रकाश डालकर उसके व्यक्तित्व की सम्पूर्णता को प्रकाश में लाता है। अयोध्यावासियों की रण–सज्जा के समय उसका वीर क्षत्राणी रूप, प्रथम सर्ग में उसका विनोदशील और मुग्धा नायिका का चित्र तथा विरह के क्षणों में उसकी क्षणिक दुर्बलता–

मुझे फूल मत मारो
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो

उस को अत्यन्त मानवीय रूप में प्रस्तुत करते हैं। बारहवें सर्ग में सुमित्रा को 'भारत मां का रूप प्रदान करना, दशरथ की मृत्यु पर कौशल्या द्वारा सती होने का प्रस्ताव रखना, कुम्भकरण की मृत्यु पर रावण का विलाप करना और उसे सुन कर राम का यह कह उठना–

राम से रावण ही सहृदय है आज

आदि 'साकेत' के पात्रों को अधिक मानवीय और मनोवैज्ञानिक बना देते हैं।

'साकेत' की मूल कथा पुरानी है, लेकिन उसका वस्तु–विन्यास नया है साकेत को केन्द्र में रखने और उसी के चारों ओर घटनाओं को सूत्रबद्ध करने के फलस्वरूप साकेत का वस्तु विन्यास नया हो गया है। गुप्त जी ने सभी घटनाओं को या तो अयोध्या में प्रत्यक्ष रूप में घटित होते हुए दिखाया है अथवा उन घटनाओं को जो अयोध्या से बाहर घटित हुई थी अयोध्या में स्थित पात्रों द्वारा वर्णित कराया है या उनकी स्मृति में घटित होते हुए चित्रित किया है। उदाहरण के लिए बाल्यावस्था से लेकर धनुष–भंग तक की सम्पूर्ण घटनाएं उर्मिला द्वारा स्मृति रूप में प्रस्तुत की गई हैं और ग्यारहवें सर्ग में लंका में होने वाली युद्ध–सम्बन्धी घटनाएं, जो लक्ष्मण शक्ति तक हुई थीं, हनुमान द्वारा सूचित की गई हैं। लक्ष्मण शक्ति के उपरान्त घटने वाली घटनाएं जैसे मेघनाद वध, राम–रावण युद्ध, सीता– उद्धार आदि वशिष्ठ द्वारा दी गई दिव्य शक्ति के माध्यम से 'साकेत' में ही दिखायी गई हैं। इस प्रसंग की उद्‌भावना द्वारा कवि ने एक ओर तो लंका की घटनाओं की रंगभूमि 'साकेत' को बना दिया है और दूसरी ओर युद्ध के लिए सजी हुई सम्पूर्ण साकेत नगरी वहीं रोक रखने के लिए अवकाश भी निकाल लिया है। इस कौशल ने राम–कथा में नया मोड़ तो अवश्य पैदा कर दिया है, परन्तु यह उद्‌भावना हास्यास्पद ही है, क्योंकि इससे कथा में अस्वाभाविकता और असम्बद्धता आ जाती है। 'साकेत' में केवल एक प्रसंग ऐसा है जो साकेत के बाहर दिखाया गया है, अर्थात् चित्रकूट मिलन, पर वहां सारी अयोध्या उपस्थित है और इसलिए चित्रकूट ही साकेत में बदल जाता है। इस काव्य की सारी घटनाओं की रंगभूमि 'साकेत' बनाकर कवि ने शिल्पगत मौलिकता लाने का प्रयास किया है। इससे काव्य में नाटकीयता और सजीवता तो आयी है, पर साथ ही कथा बिखर कर रह गई है।

नाटकीय कथोपकथन और तर्कपूर्ण उत्तर– प्रत्युत्तर भी साकेत के वस्तु–विन्यास को नया रूप प्रदान करते हैं। ये एक ओर तो कवि की बौद्धिकता और तार्किक मनोवृत्ति के परिचायक हैं जो आधुनिक युग की विशेषता है और दूसरी ओर ये स्थल काव्य को चमत्कारशून्य नीरस इतिवृत्त होने से बचा लेते हैं। इसी प्रकार नवम सर्ग के गीत यद्यपि कथा को विश्रृंखलित बना देते हैं, परन्तु उनके कारण उर्मिला के हृदय के अन्तः संघर्ष और विविध मनोवृत्तियों पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है जो भाव–प्रधान काव्य को देखते हुए अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता।

साकेत में अनेक नवीन प्रसंगों की उद्‌भावना की गयी है जिनसे काव्य की मनोवैज्ञानिकता एवं मर्मस्पर्शिता और भी बढ़ गयी है। लक्ष्मण शक्ति का समाचार सुन भरत शत्रुघ्न तथा अयोध्यावासियों का चुपचाप बैठे रहना अस्वभाविक और असंगत प्रतीत होता है। पर गुप्त जी से पूर्व इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया। गुप्त जी ने इस त्रुटि का परिहार कर अयोध्यावासियों की रण–सज्जा, उर्मिला एवं सुमित्रा का क्षत्राणी रूप दिखाकर अपनी रचना को अधिक मनोवैज्ञानिक एवं कलात्मक बना दिया है। घटना सम्बन्धी कुछ अन्य मौलिक उद्‌भावनाएं भी कवि ने की हैं, जैसे संजीवनी बूटी का प्रसंग या चित्रकूट पर उर्मिला–लक्ष्मण मिलन का प्रसंग। प्रथम के द्वारा गुप्त जी ने हनुमान द्वारा लक्ष्मण शक्ति तक की घटनाओं को सुनाने का अवकाश तो निकाल ही लिया है, साथ ही पर्वत उठाकर लाने की अस्वाभाविकता का भी परिहार कर लिया है। दूसरे प्रसंग द्वारा कवि उर्मिला–लक्ष्मण के विरह की गहनता एवं भावों की विषमता को चित्रित कर सका हैः

गिर पड़े दौड़ सौमित्र प्रिया–पद–तल में
वह भीग उठी, प्रिय–चरण धरे .ग–जल में।

1.5 निष्कर्ष

गुप्त जी ने 'साकेत' में जो नवीन उद्‌भावनाएं की हैं उनके पीछे पात्रों के प्रति सहानुभूति तथा नये युग की विचारधारा का प्रभाव है। इन नवीन उद्‌भावनाओं से राम कथा के कुछ उपेक्षित अंश अवश्य सजीव हो गये हैं, परन्तु कहीं–कहीं उसकी सरसता, सौष्ठव और क्रमबद्धता बाधित हुई है।

1.6 कठिन शब्द

1. उद्‌भावना
2. मर्मस्पर्शिता
3. मौलिकता
4. प्रक्षालन
5. क्रांतदर्शी
6. तकली
7. भूतल
8. स्रोत
9. पर्व
10. प्रबन्धात्मकता

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1. हिन्दी में राम–काव्य की विस्तृत परम्परा मिलती है, इस कथन को सोदाहरण स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

प्रश्न 2. रामकाव्य परम्परा में साकेत का स्थान निर्धारित करें।

_____

_____

_____

प्रश्न 3. साकेत आधुनिक युग का महाकाव्य है, स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

1.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. साकेत : मैथिलीशरण गुप्त
2. साकेत : एक अध्ययन – डॉ. नगेन्द्र
3. मैथिलीशरण गुप्त : एक मूल्यांकन – राजीव सक्सेना

साकेत का महाकाव्यत्व

2.0 रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 साकेत का महाकाव्यत्व

2.3.1 जीवंत कथानक

2.3.2 उदात्त चरित्र

2.3.3 प्रभावान्विति

2.3.4 महाप्रेरणा तथा महत् उद्देश्य

2.3.5 सामाजिक जीवन का समवेत चित्र

2.3.6 महती काव्य प्रतिभा

2.3.7 भाषा–शैली

2.4 निष्कर्ष

2.5 कठिन शब्द

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.7 संदर्भ ग्रन्थ

2.1 उद्देश्य

इस आलेख के अध्ययनोपरान्त आप –

- साकेत के महाकाव्यत्व से अवगत होंगे।
- महाकाव्य के विभिन्न तत्वों को जान पाएंगे।
- साकेत की भाषा शैली को समझ सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

प्रत्येक कलाकृति मौलिक लेखन की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न होती है। ऐसी कृतियों की पहचान में पुराने प्रतिमान प्रायः छोटे पड़ने लगते हैं क्योंकि हर युग अपनी संवेदना का ऐसा सम्यक चित्र प्रस्तुत करना चाहता है जिससे पुरानी पद्धतियों या रूढ़ियों या प्रतिमानों की अवहेलना हो जाती है। ऐसा प्रयास इसलिए घटित होता है कि हर युग और हर लेखक मौलिकता का आग्रही होता है 'साकेत' यद्यपि रामकाव्य–परम्परा की अमरनिधि है, फिर भी युग संवेदना के व्यापक परिसर में इसकी मौलिकता सर्वथा सुरक्षित है। अपने युग की ऐसी तीखी और तल्ख तस्वीर 'साकेत' पेश करता है, कि वह रामकाव्य की परम्परा का होकर भी अपनी निजता को अक्षुण्ण रखता है। लेकिन साकेत की विचारधारा और कथाविवेचन में परम्परागत शास्त्रीय विधानों का निर्वाह किया गया है। इसलिए इसके महाकाव्यत्त्व पर शास्त्रीय पद्धति से विचार किया जाना अनुचित नहीं है।

2.3 साकेत का महाकाव्यत्व

संस्कृत के आचार्यों के अनुसार महाकाव्य के निर्धारक प्रतिमान हैं–ऐतिहासिक कथावृत्त, महान और ऐतिहासिक चरित्र, कथा का सर्गबद्ध विभाजन, वर्णन में विविधता, सभी रसों के प्रतिपादन के साथ ही किसी एक रस की प्रधानता – वीर, श्रृंगार और शान्त, लोकरंजन की भावना, महान उद्देश्य का प्रतिष्ठापन, छन्दों की विविधता, लेकिन प्रत्येक सर्ग में एक विशेष छन्द की प्रमुखता तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन की सूचना और इसी परिवर्तित छन्द से आगामी सर्ग की रचना पंच सन्धियों का निर्वाह आदि आधुनिक कलाकृतियों पर पश्चात्य रचना–विधान का भी गहरा प्रभाव है इसलिए रचना के मूल्य निर्धारण में पाश्चात्य समीक्षा की विचारधारा की उपेक्षा संभव नहीं है। पाश्चात्य काव्य – शास्त्रियों में भी मतभेद है 'साकेत' और 'कामायनी' जैसी समृद्ध संवेदना वाली रचनाओं की पहचान भारतीय और पाश्चात्य दृष्टियों के समवेत रूप से ही संभव है दोनों दृष्टियों के समाहार से महाकाव्य के लिए निम्नलिखित तत्त्वों की अपेक्षा होती है– जीवंत कथानक, उदात्त चरित्र, प्रभावान्विति महत्प्रेरणा, महान उद्देश्य, सामयिक जीवन का समवेत चित्र, महती काव्य–प्रतिभा, और प्रवाह पूर्ण भाषा शैली का नियोजन।

2.3.1 जीवंत कथानक

साकेत की कथा मूलतः 'मानस' की विराट कथा पर आधृत है इसकी कथा में यथोचित विस्तार एवं फैलाव है। कथा की प्राणवन्तता तथा परम्परावादी स्वरूप की रक्षा के प्रति लेखक प्रतिबद्ध नजर आता है। इस प्रकार सम्पूर्ण कथा प्रख्यात है और इस प्रख्यात कथा की महिमा की रक्षा की गयी है 'साकेत' की सर्गबद्ध कथा की अविच्छिन्नता की बहुत चर्चा हुई है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की शिकायत है कि 'प्रथम आठ सर्गों में प्रबन्ध स्वरूप अधिक व्यवस्थित अवश्य है परन्तु वहाँ एक दूसरे प्रकार की त्रुटि अवश्य आ गयी है। इन आठ सर्गों में केवल कुछ दिनों की ही घटनायें संकलित हैं जबकि चौदह वर्ष के लम्बे समय का वर्णन अन्तिम चार सर्गों में ही समाहित है। कथावस्तु की इस त्रुटि का कारण सम्भवतः यह है कि कवि ने साकेत की वस्तु कल्पना अपने प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन में की थी और एक बार ढाँचा बन जाने के उपरान्त उसमें परिवर्तन करना कठिन हो गया.....।' इसी तरह की शिकायत श्री गिरीश तथा डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने भी की है। डॉ. नगेन्द्र का अभिमत है कि 'दशरथ–मरण, भरत आगमन तथा चित्रकूट प्रसंग बड़े मनोयोग से अंकित किए गये हैं। पर इसका मूल कथावस्तु के साथ समीपी सम्बन्ध नहीं है। यह ठीक है कि 'साकेत' की कथावस्तु में अविच्छिन्नता का अभाव है परन्तु ऐसा शिल्प कौशल गुप्तजी की निपुणता का मापदण्ड बन जाता है। कथा के असन्तुलित विधान के कारण ही परम्परावादी कथा पर आधुनिक भावबोध की प्रबलता दिखाई पड़ती है। साकेतकार का उद्देश्य ही है ऊर्मिला के काल विस्तृत चरित्र का सम्यक चित्र प्रस्तुत करना इसलिए यह स्वाभाविक है कि वह उन सन्दर्भों को व्याख्यायित करना चाहेगा जिनके माध्यम से उर्मिला की मूल संवेदनाओं को व्यापक आयाम दिया जा सके। साकेतकार राम की परम्परित कथा का पुनर्लेखन करना नहीं चाहता है बल्कि भक्ति के नैवेद्य के साथ ही उर्मिला की संवेदना को युगबोध से जोड़कर प्रस्तुत करना चाहता है। अपनी सिद्धि तक पहुँचने के लिए उसने परम्परित कथा का नवीनीकरण भी किया और कथा संयोजन में पूरी स्वतन्त्रता से काम लिया है। इसमें कार्यान्विति तथा प्रभावान्विति की रक्षा की गयी है। कार्यान्विति तथा प्रभावान्विति की रक्षा करती हुई कथा स्वाभाविक विकास की दिशा के लिए प्रतिश्रुत है 'साकेत' के कथा निर्माण की भव्यता परम्परानुरागी होने में नहीं हैं, अपितु स्वाभाविकता तथा कार्यान्विति के सम्यक निर्वाह के साथ जुड़ी हुई है। डॉ. सूर्यप्रकाश दीक्षित ठीक ही कहते हैं कि 'साकेत' का उद्देश्य केवल एक व्यक्ति विशेष का आद्योपांत जीवन चरित्र प्रस्तुत करना नहीं है बल्कि वह एक निश्चित कालावधि में एक सीमित देशकाल के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट पात्रों की गतिविधि निरूपित करना चाहता है। इसलिए नायक के जन्म से मरण तक सारी घटनाओं के फेहरिस्त तैयार करना अथवा उसे जीवनी का रूप देना कवि को अभिप्रेत नहीं है।'

साकेत के हर सर्ग की अपनी उपयोगिता है जिसके माध्यम से उर्मिला का त्याग भरा व्यक्तित्व उद्घाटित होता है। प्रत्येक सर्ग का नियोजन महाकाव्य के विराट फलक के अनुकूल किया गया है। प्रथम सर्ग में सरस्वती वन्दना के साथ चारों भाइयों और उनकी पत्नियों का परिचय है। इससे 'साकेत' के पारिवारिक संगठन का पूर्वाभास मिल जाता है। प्रभाव–वर्णन, नर–नारी के चित्रण, सरयू वर्णन के बाद उर्मिला– लक्ष्मण के

संयोगकालीन प्रसंग की सर्जना की गई है। यह चित्र दाम्पत्य–जीवन की भोगवादी परिस्थिति से बँधा हुआ है जिसमें समर्पण भरा प्रणय निवेदन के प्रसंग को थोड़े विस्तार के साथ विवेचित किया गया है। इस विस्तृत आयोजन का एक अभीष्ट यह दिखाई पड़ता है कि संयोगकाल के अतिशय आनन्द के चित्र के द्वारा नवम् सर्ग की विरहानुकूल अनुभूति को अधिक तीखा एवं तल्ख बनाया गया है। इस वर्णन में मांसलता अधिक है। डॉ. कमलाकान्त पाठक का कहना है कि 'गुप्त जी ने लक्ष्मण के प्रेम को रूपासक्ति में परणित ही नहीं किया वरन् उसको शरीरी भी बनाया। इसमें कोई अस्वाभाविकता नहीं है पर यह शृंगारिक अमर्यादा का उदाहरण तो है ही।' निश्चित ही डॉ. पाठक का संकेत 'धन्य है प्यारी, तुम्हारी योग्यता, मोहिनी–सी मूर्ति मंजू मनोज्ञता' जैसी पंक्तियों की ओर है। इस परिणय प्रसंग में दाम्पत्य जीवन की झांकी निष्ठापूर्ण प्रस्तुत की गयी है। ऐसे प्रसंगों में अमर्यादा की झलक इसलिए दिखाई पड़ती है कि राम के साथ ही लक्ष्मण और उर्मिला आध्यात्मिक लोक की चेतना समझे जाते हैं। यदि लक्ष्मण और उर्मिला को आध्यात्म लोक से उतार कर मानवीय भूमि पर अवस्थित करके इस प्रसंग को देखा जाय तो निश्चित ही यह बड़ा ही मार्मिक और मानवोचित क्रिया–कलाप से सम्पन्न है मेरी समझ में ऐसा प्रसंग गुप्तजी की प्रबन्ध कल्पना का अमर चिह्न है। द्वितीय सर्ग में राज्याभिषेक की तैयारी का वर्णन है। यह सम्पूर्ण सर्ग अयोध्याकांड का ऋणी है। इस सर्ग की धन्यता यह है कि इसमें कैकेयी ममतामयी माता की भूमिका में उतर आयी है और वह स्वभावतः कुटिल नहीं है बल्कि सन्देहशील बन गयी है अतः यहाँ की कैकेयी अजस की पेटारी नहीं है बल्कि मनोविज्ञान की राह से आकर अधिक भावनामय हो गयी है। तीसरे सर्ग की कथा राम, लक्ष्मण और सीता के वन प्रस्थान की तैयारी से आरम्भ होती है। इस सर्ग में राम देवत्व को भूमिका में प्रतिष्ठित हैं तथा लक्ष्मण का सौरवादी स्वरूप ही अधिक उच्चरित हो गया है जबकि द्वितीय सर्ग के लक्ष्मण चन्द्रवादी हो गये हैं। दशरथ वात्सल्य से अभिभूत हैं। 'साकेत' में दशरथ का दौर्बल्य वस्तुतः मानस की प्रतिच्छाया है। चतुर्थ सर्ग भी वन–गमन प्रसंग की विह्वलता में डूबा हुआ है। राम, सीता और लक्ष्मण कौशल्या से विदा माँगते हैं। भावाभिभूत कौशल्या कह देती है 'भरत राज्य की जड़ न हिले मुझे राम की भीख मिले'। कौशल्या का कातर स्वरूप 'मानस' में भी उपलब्ध है लेकिन साकेत की कौशल्या भावाभिभूत अधिक है। उर्मिला इस सर्ग में उपेक्षित है। नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है कि 'तीनों सर्ग उर्मिला की परिस्थिति की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं' अर्थात् द्वितीय से चतुर्थ सर्ग तक उर्मिला उपेक्षित रह जाती है। यह उपेक्षा बड़े तूफान के पूर्व की शान्ति की तरह है। पाँचवें सर्ग में वनगमन का प्रसंग है। इस प्रसंग में कोई उल्लेखनीय मौलिकता नजर नहीं आती 'मानस' का यह प्रसंग इतना भावोत्तेजक है कि उसका रस विस्तार श्रमसाध्य कार्य है। छठे वर्ग में अश्रुस्नात यौवन वाली उर्मिला की मूर्च्छना का चित्र है। डॉ. कमलाकान्त पाठक के अनुसार 'प्रथम सर्ग की प्रेम–प्रगल्भा यहाँ विरह–विदग्ध हो गयी है।' सातवें सर्ग में भरत और शत्रुघ्न के अयोध्या लौटने का उल्लेख है 'मानस' की तरह इसमें लोक–भीरुता, आत्मग्लानि आदि का वर्णन है। हां, दशरथ के महासंस्कार के अवसर पर भरत की आत्म–प्रतारणा अधिक मर्मस्पर्शी हो गयी है। सातवें और आठवें सर्ग में उर्मिला मूक बनी रहती है अष्टम सर्ग में चित्रकूट का प्रसंग है यहाँ सीता का कृषिबाला रूप अधिक प्रभावशाली एवं युगबोध से प्रभावित है नवसर्ग में कथा का अभाव है। यह ऊर्मिला का विरह उच्छवास मात्र है।

यह पूरा सर्ग ही प्रगीत प्रधान है जिसमें उर्मिला की विरह–व्यंजना की तीव्रता है। इसमें गीतात्मकता और छन्द योजना का निर्वाह हुआ है। इस सर्ग में विविध छन्दों के प्रयोग से उर्मिला की चित्तवृतियों के वैविव्य को उभारा गया है और यह महाकाव्य की शर्तों के अनुकूल भी है। दशम् सर्ग में प्रतीक्षाकुल उर्मिला के मनोभावों का विश्लेषण हुआ है। इस सर्ग की मौलिकता यह है कि प्रतीक्षाविरत उर्मिला सरयू को अभिसारिका समझकर अपना जीवन–वृत्त सुना डालती है। 'आध्यात्मरामायण' में राम सीता की छाया से अपने अतीत भोगी जीवन की घटनाओं की चर्चा करते हुए अपने पीड़ित मनोभावों को शांत करने की चेष्टा करते हैं। इसमें राम कथा के छूटे हुए सूत्रों का समाहार करने की चेष्टा की गयी है। द्वादश सर्ग में ऊर्मिला के शौर्य का चित्रण है। उसके आँसू सूख जाते हैं साकेत की सैन्य–सज्जा गुप्तजी की मौलिक काव्य प्रतिभा की देन है। वह अपनी वेदना को भूल राष्ट्र सेविका के रूप में क्रियाशील हो जाती है। कवि की राष्ट्रीय भावना ही इस सर्ग में ढल गयी प्रतीत होती है। इसमें उर्मिला और लक्ष्मण का मिलन बड़ा ही उदात्त बन गया है। डॉ. कमलाकान्त पाठक के शब्दों में 'दम्पति का मिलन, शील और शील का, प्रेम और प्रेम का हृदय और हृदय का मिलन है।'

सर्वोद्ध कथा में नवीन उदभावनाओं की प्रधानता है। गुप्तजी ने रामकथा को आधुनिक और पारिवारिक वातावरण में पर्यवसित कर दिया है। इस उद्भावना में भावना और बुद्धि का गहरा सहयोग है। नारी पात्रों की नयी वस्तु कल्पना, उपेक्षित स्थलों की पहचान, राम का मानवतादर्श, लोकोत्तर घटनाओं की बुद्धिनिष्ठ और विश्वासमयी व्याख्या, तथा प्रेम–या और आधुनिक जीवनादर्श का भावनामय निरूपण साकेत की कथावस्तु को नवीन आधार प्रदान करता है। 'साकेत' का कथावृत्त अपनी प्राणवन्ता तथा व्यापकता के साथ समुपस्थित हुआ है। अतः यहाँ कथा – निर्वाह एवं निर्माण में महाकाव्य की गरिमा का पूर्णतः पालन किया गया है।

2.3.2 उदात्त चरित्र

डॉ. शम्भूनाथ सिंह के अनुसार पात्र चाहे वह आदर्श हो या कल्पित अथवा यथार्थ, पर हर हालत में महाकाव्य के लिए उसका चरित्र अत्यन्त महत्वपूर्ण होना चाहिए। 'साकेत' में भी उदात् चरित्रों का अभाव नहीं है। 'साकेत' के केन्द्र में बैठी उर्मिला अपने व्यवहार एवं भोग में उदात्तता की रक्षा करती है। 'साकेत' की कथा को विस्तार देने वाले राम और सीता न केवल अपने गौरवशाली स्वरुप की रक्षा करते हैं, बल्कि ये अधिक प्रभावपूर्ण एवं भावनामय लगते हैं साकेत की कैकेयी ममता की जलती हुई दीपशिखा बन जाती है। लक्ष्मण भी सौर जगत् से उतरकर चन्द्रजगत में स्थापित हो जाते हैं। साकेत की पात्र उदभावना में सांस्कृतिक और भक्तिमूलक दृष्टिकोण अधिक मुखर हो गया है। इसीलिए मानस की तरह साकेत के सभी पात्र आदर्शवादी बन गये हैं। यहाँ तक की साकेत की गहन संवेदना के वृत्त में बैठी हुई उर्मिला भी आदर्श की प्रतिमा हो गयी है 'मेघ का तथा 'साकेत' में पात्रनिर्माण की दृष्टि से भिन्नता यह है कि जहाँ मधुसूदन दत्त पात्रों की दृष्टि से केवल कल्पना से काम लेते हैं, यहाँ गुप्त जी आधुनिकता के निर्वाह एवं पात्र उद्भावना में प्राचीनता और नवीनता को जोड़कर नवोन्मेष की सृष्टि करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पुरानी काया में ही नये रक्त का संचार कर जवानी लौटा दी जाती है। यहाँ केवल बौद्धिक चमत्कार ही नहीं है, बल्कि परम्परागत

पावनता भी वर्तमान है। 'साकेत' के राम 'मानस' के राम की तरह देववादी हैं, लेकिन राम 'मानस' के शीर्ष पर अवस्थित हैं, 'साकेत' में वह स्थान उर्मिला को मिल गया है। राम के साथ कथा विस्तार पाती है और उर्मिला के साथ संवेदना का आधुनिकीकरण होता है 'साकेत' के राम अपनी ईश्वरीय शक्ति की स्वयं चर्चा करते हैं–

मैं आर्या का आदर्श बताने आया,
इस भूतल ही को स्वर्ग बनाने आया।

'मानस' के राम पृथ्वी का भारहरण करने के लिए ही उत्पन्न हुए हैं। स्वयं गुप्तजी ने स्वीकारा है कि उन्होंने सभी चरित्रों को अपनी श्रद्धा दी है। इसलिए कुछ प्रधान चरित्रों के अतिरिक्त दूसरे चरित्र भी प्राणवन्त हैं। डॉ. नगेन्द्र मानते हैं कि 'हनुमान और भरत में कवि प्रायः स्वयं आकर बोला है और विभीषण का चरित्र तो उसके अपने विचारों का ही प्रतिबिम्ब है। कवि स्पष्टतः विभीषण को पीछे हटाकर आप उसकी ओर से सफाई देता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि इस से चरित्रों की निजता आहत हुई है। दरअसल साकेत के सभी पात्र स्वतन्त्र है और उनकी भोगवादी परिस्थितियों का निर्माण हुआ है ये सभी चरित्र जातीय है। यह ठीक है कि 'साकेत' के पात्र मानस' की तरह दैवीकृत नहीं है, परन्तु उनका व्यवहार हमारे दैनिक जीवन के व्यवहार से भिन्न जरूर है। हाँ, उसकी यह भिन्नता न तो असामाजिक है और न अस्वाभाविक, बल्कि हमारे व्यवहारजगत् के निकटस्थ जरूर है। राम को छोड़कर प्रायः सभी पात्र अपने देवलोक को छोड़कर भूमिवासी होना चाहते हैं। यह अलग से प्रश्न उठता है कि वे पूर्णतः भूमिवासी हो पाये हैं या नहीं।

उदात्त पात्रों के निर्माण में गुप्तजी को पर्याप्त सफलता मिली है। इन पात्रों की अनुभूतियों से जो विचारधारा बनती है उसमें प्राचीनता और नवीनता का संयोग है साकेत में अभिव्यक्त गृहस्थ जीवन का चित्र स्पष्ट एवं उपयोगी है। आज के व्यक्तिवादी युग के फैलाव में गृहस्थ जीवन का पूर्ण चित्र प्रेरणादायक है। डॉ. नगेन्द्र ने 'साकेत में गृहस्थ जीवन के सफल नियोजन के सम्बन्ध में लिखा है ''जिसने गुप्तजी के काव्यों का एक बार भी अध्ययन किया होगा, वह अवश्य मान लेगा कि उनको गृहस्थ जीवन के चित्र खींचने में अद्वितीय सफलता मिली है।''

साकेत में व्यष्टि चरित्र और वर्ग चरित्र के समन्वय की चेष्टा की गयी है। राम अपने प्राचीन गौरव के कारण वर्गगत चरित्र नहीं हो पाये लेकिन सीता, लक्ष्मण उर्मिला जैसे पात्रों को वर्गगत बनाने की चेष्टा की गयी है। इसमें कवि को आंशिक सफलता मिली है। लक्ष्मण तथा उर्मिला के मानवोचित क्रियाकलापों को देखकर भक्तमाल गूंथने वाले आलोचक की परेशानी बढ़ जाती है और कहा जाता है कि इस प्रकार वर्णन यदि सूक्ष्म और मानसिक सौन्दर्य से अधिक सम्पन्न होते तो काव्योचित होता।' 'बात है कि कवि प्रेम को कायिक न बनाता तो उसकी मानसिक और आध्यात्मिक की विधियों मनोवैज्ञानिक न होती'। इसके अभाव में दाम्पत्य रति का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत नहीं किया जाता। निश्चित रूप से संयोगकालीन स्मृतियाँ वियोग में

विपुला हो जाती है और नायिका वियोग काल में उनका उपभोग करती हुई वियोगकालीन उष्णता को प्रशमित करती है।

'साकेत के सभी पात्र वर्गगत नहीं है, लेकिन पारिवारिक स्थितियां वर्गगत है एक परिवार की आन्तरिक एकता किस प्रकार अक्षुण्ण रह सकती है तथा पारिवारिक जीवन के निर्वाह के लिए किस प्रकार अपने स्वार्थों का सीमांकन होना चाहिए ये चित्र 'साकेत' की उपलब्धि हैं। ये सारे चित्र राम परिवार के परिवेश में व्यक्तिगत हैं तथा भारतीय जीवन के विशाल परिसर में भी वर्गगत हैं। राष्ट्रीय जीवन के प्रति निष्ठावान कवि की चेष्टा भी यही है कि भारत की पारिवारिक व्यवस्था सुसंगठित ढंग से चले इस प्रकार उदात्त चरित्रों के निर्माण में गुप्त जी को सराहनीय सफलता मिली है।

2.3.3 प्रभावान्विति

साकेत के शिल्प–विन्यास की ही सफलता है कि पात्रों के चरित्र – विन्यास और रसात्मक प्रसंगों की उद्‌भावना के समन्वय से काव्य की प्रभावोत्पादक शक्ति को प्राणवन्त बनाया गया है। यद्यपि 'साकेत' में ऐसे विपुल उदाहरण भी हैं जहाँ रसात्मकता आहत हुई है लेकिन ये प्रसंग किसी विशाल सुन्दर वाटिका के कुछ झुलसे हुए पौधों के समान ही हैं। ऐसे प्रयोगों और प्रसंगों से 'साकेत' की प्रभावान्विति नीरस नहीं हुई है। आधुनिकता का स्वर 'साकेत' में अधिक मुखरित हो गया है। इस नवीन उद्‌भावना और नियोजन के प्राचीन कथा–विधान को आधुनिकता से जोड़कर उसकी प्रभावान्विति की रक्षा की है। प्रेम, शोक, विरत्न साधुता सात्विकता रोमांच आदि भावों के निरूपण में नाटकीयता बनी रहती है, जिससे प्रभावान्विति की रक्षा की गयी है। डॉ. कमलाकान्त पाठक की उक्ति है कि.... उसमें प्रथम श्रेणी की तीव्रता, गहनता और विस्तार चाहे न हो, पर वह कवि की भावुकता को अवश्य स्पष्ट करती है। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि 'साकेत' रूक्ष या उपदेशात्मक कृति नहीं है, वह रसात्मक काव्य है। गुप्तजी के पात्र सप्राण है, संवेदनशील हैं और गम्भीर प्रभाव की सृष्टि करते हैं।''

'साकेत' में गुप्तजी ने भावोद्रेक की प्रबलता से प्रभावान्विति की रक्षा की है। उन्होंने 'मानस के उपेक्षित एवं आनुषांगिक प्रसंगों को अधिक विस्तार दिया है। मानसकार की रचना में भक्ति भावना निहित है, साकेतकार की रचना में भक्ति की सहचरी प्रेमवंतता और करुणा है। तुलसी का ध्यान राम के अलौकिक और लोकमंगल रूप पर केन्द्रित हैं, 'साकेत' में गुप्त जी का ध्यान तप के साथ ही प्रेम के स्वाभाविक चित्रण पर अवस्थित है। प्रेम के विस्तार से कायिक प्रसंग की उद्‌भावना का खतरा भले उत्पन्न हो गया है, लेकिन रचना की प्रभावान्विति में शक्ति आयी है। मानस की तरह इसमें भाव विस्तार नहीं है, लेकिन भाव विपुलता और अनेकता है। 'साकेत' में मानसिक स्थितियों के विपुल चित्र हैं। ये सारे चित्र मानवीय जीवन के बिल्कुल निकट दिखाई पड़ते हैं। यही कारण है कि मानस जैसी रचना को आधार ग्रन्थ मानकर भी गुप्त जी ने साकेत में प्रभावान्विति की रक्षा करने में सफलता पायी है।

2.3.4 महाप्रेरणा तथा महत् उद्देश्य

'साकेत रचना की प्रेरणा के केन्द्र में उर्मिला का गौरवशाली व्यक्तित्व है। उर्मिला ऐतिहासिकता के मोहग्रस्त कोने में विस्मृत कर दी गयी थी। इस ओर रवि बाबू तथा महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने नये कवियों का ध्यान आकृष्ट किया था। दूसरी बात कि किसी भी रचना पर युगीन प्रभाव पड़ता है और उसकी सर्जना में भी युग की संवेदना क्रियाशील रहती है। 'साकेत' की रचना की प्रेरणा युगबोध है। आधुनिक बोध में नारी को भोग की सघन कोठरी से निकालकर जीवन और राष्ट्रीय चेतना के विशाल परिवेश में रखा गया है। 'साकेत' की प्रेरणा में नये नारी–बोध की भावना निहित है। इस युग की मानवतावादी धारणा भी साकेत की रचना की प्रेरणा है आचार्यों ने अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष को महाकाव्य की प्रेरक स्थितियाँ मानी हैं। 'साकेत' में धर्म का स्वरूप विस्तृत हो गया है। यहाँ धर्म की रूढ़िवादी व्याख्या नहीं हुई है, बल्कि धर्म मानवीय कर्तव्य के साथ जोड़कर देखा गया है। मोक्ष भी मुक्ति या स्वच्छन्दता के अर्थ में प्रयुक्त है। नारी – स्वच्छन्दता और नारी महिमा का वर्णन 'साकेत' का साध्य है। इस प्रकार प्राचीन दृष्टि से भी धर्म और मोक्ष या मुक्ति की रक्षा की गयी है। अर्थ और काम की स्थिति भी नये सन्दर्भ में व्यंजित है। अरस्तू के अनुसार महाकाव्य की प्रेरणा सत्योद्घाटन होती है आनन्द की प्राप्ति महाकाव्य का उद्देश्य होता है। 'साकेत' में जीवन सत्य का उद्घाटन हुआ है। जीवन आत्मकेन्द्रित नहीं है, वह सामाजिक है। किसी के जीवन की सार्थकता सार्वभौम की सेवा में निहित है। 'साकेत' की उर्मिला इसी सार्वभौम के हित के लिए वियोग की ज्वाला में तिल–तिल जलना स्वीकार्य करती है।

डॉ० शम्भूनाथ सिंह ने लिखा है कि 'महाकाव्य के युग–विशेष के समग्र जीवन का चित्रण किसी कथा के माध्यम से होता है जिसका चरम बिन्दु कोई महत्वपूर्ण कार्य और आश्रय कोई एक प्रधान पात्र है 'साकेत' का प्रधान पात्र है और उसके चरित्र के माध्यम से सांस्कृतिक भाव–बोधों तथा युग चेतना को मुखरित किया गया है। उर्मिला और लक्ष्मण के कार्य–व्यापार को सार्वजनीन बनाने की चेष्टा के कारण ही राष्ट्रीय चेतना का स्वर उच्चारित होता है। इस प्रकार महान् उद्देश्य एवं प्रेरणा की दृष्टि से 'साकेत' का महाकाव्यत्व असंदिग्ध है। 'साकेत' के महाकाव्यत्व की पहचान परम्परागत रूप से नहीं हो सकती बल्कि जीवन की गतिशीलता और युगबोध चेतना के विस्तार में संभव है।

2.3.5 सामाजिक जीवन का समवेत चित्र

महाकाव्य में सामाजिक जीवन की प्राणवत्ता की अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में डॉ० शम्भूनाथ सिंह का कहना है 'महाकाव्य की जीवनी शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि वह समाज को कितनी शक्ति कितना साहस और जीवन को कितनी उमंग तथा आस्था प्रदान करता है। महाकवि जब अपनी सप्राणता को महाकाव्य में जीवन्त रूप में उतारता है, तभी महाकाव्य में वह सशक्त सप्राणता आ पाती है, जो युग–युग तक समाज को शक्ति और प्रेरणा प्रदान कर सकती है। 'सामाजिक भावबोधों के चित्रण में 'साकेत' की सफलता दिखलायी पड़ती है। आधुनिक युग के बौधों और परिस्थितियों की उद्भावनाओं का 'साकेत' में अभाव है। 'साकेत' की

शक्तिशाली नारी उर्मिला के जीवन चित्रण में रीतिकालीन ऊहात्मकता मिल जाती है। उर्मिला की दृष्टि में भी नवबोध का पूर्णता जागरूक स्वर नहीं मिलता। वियोग के कारण तवंगी उर्मिला अपने ताप से मुक्ति पाने के लिए अधिक व्यग्र है। 'साकेत' में वैदिक स्तर का सुनियोजित निर्वाह नहीं हुआ है। यद्यपि भक्ति से मानवता को महत्व देने के कारण 'साकेत' की जीवनी–शक्ति समृद्ध हुई है, तथापि जीवन के व्यापक चित्रण में 'साकेत' अकिंचन बन गया है। डॉ० कमलाकान्त पाठक का कहना है कि 'साकेत' की जीवनी–शक्ति निश्चय ही अनवरूद्ध है पर सशक्त प्राणवत्ता के सम्बन्ध में भावुकतामयी सप्राणता कहां तक सशक्त हो सकती है? यह बिल्कुल ठीक है कि बौद्धिक चेतना की क्रांति के युग में साकेत अतिशय भावुकता से पीड़ित है। लेकिन इस भावुकता के बीच भी चेतना के नवीन स्तर पर युगबोध के क्रान्तिकारी चिन्तन की पहचान में 'साकेत' की सफलता असंदिग्ध है। आधुनिकता के निर्माण में साकेत कहीं–कहीं अपना स्तर छोड़ देता है। ऐसे प्रसंग में महाकाव्य की गरिमा पर आशंका होती है। राम के वन–गमन पर प्रजा का अवज्ञा–भाव प्रदर्शन, उर्मिला का सैन्यसंघटन और अहिंसावादी भाषण सतहीपन का ही द्योतक है। फिर भी सामाजिक समस्याओं का उपस्थापन और उसके निदान की ओर 'साकेत सजग है। 'साकेत' की धन्यता परम्परा और नवीनता के बीच सेतु निर्माण में है। सामाजिक प्रभाव का मनोविश्लेषण, श्रृंगार की व्यावहारिक व्याख्या तथा पात्रों का मानवीकृत स्वरूप साकेत की चौतन्य स्थिति का परिचायक है। कहने की आवश्यकता नहीं कि 'साकेत में विकासमान युग की बीसवी शताब्दी, ईसा की आरम्भिक आधुनिकता सुस्पष्ट है। वह अभ्युत्थान की प्रेरक शक्तिमत्ता लिए हुए है, अतः सामाजिक जीवन के समवेत चित्रण में 'साकेत' की सफलता स्पष्ट है। पारिवारिक जीवन का जैसा सुस्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया गया है, वह नयी चेतना की प्रेरक शक्ति है।

2.3.6 महती काव्य प्रतिभा

महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए महत्वपूर्ण प्रेरणा के साथ ही महती काव्य–प्रतिमा भी अपेक्षित है। प्रतिभा के अभाव में प्रेरणा अर्थहीन बन जाती है। गुप्त जी की सम्पूर्ण काव्य–सम्पदा को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इस कवि के पास विलक्षण प्रतिभा का अभाव है। इनका सम्पूर्ण काव्य– वैभव उस अलबम के समान है जिसमें सुस्पष्ट चित्रों की जगह टेढ़ी–मेढ़ी रेखाओं की अधिकता है। गुप्तजी की कृतियों में सौन्दर्यपूर्ण स्थलों से सपाट स्थलों की संख्या कम नहीं है। सचमुच गुप्तजी प्रतिमा के वैसे धनी नहीं है जैसे कालिदास, भवभूति तुलसी, सुर आदि है। फिर भी कवि में आधुनिक महाकाव्य के रचयिताओं से अधिक प्रतिभा है। 'साकेत' में कवि की काव्य–प्रतिभा के विपुल प्रमाण उपलब्ध है। उर्मिला के चरित्र में नवोन्मेष का समावेश, नवीन शिल्प नियोजन का प्रयास। महाकाव्य की नयी परिधि का निर्माण, अलौकिकता के साथ लौकिकता का समन्वय, प्रगीतों में चित्रात्मकता की प्रधानता, बरवै जैसे अवधी और ब्रजभाषा के छन्दों का खड़ी बोली में उतारना, विरह की उन्मादपूर्ण छवियों का तर्क सम्मत प्रतिपादन और उसके बीच–बीच में विरही नायक के चित्र से विरहाकुल क्षणों को गरिमापूर्ण बनाना, गीतों के मध्य नाटकीय– नियोजन भाव तन्मयता के चित्र का प्रस्तुतीकरण जैसे दुरूह कार्यों का सफल सम्पादन किसी साधारण प्रतिभा के लिए सम्भव नहीं है। प्रत्यक्ष

जीवन की अनुभूति का सघन चित्रण 'साकेत' की अनुपम उपलब्धि है। यह उपलब्धि विलक्षण काव्य–प्रतिभा से ही उपलब्ध हो सकती है। 'साकेत' में साहित्यिक चेतना, सांस्कृतिक भाव–धारा, युग की तात्कालिकता, जीवन के व्यवहार पक्ष का सांगोपांग विवेचन समन्वय गुप्तजी की प्रतिभा की देन है। अतः अपनी सीमाओं के बीच गुप्त की प्रतिभा ऐसी तो है ही जिससे महाकाव्य का निर्माण किया जाता है। किसी भी रचना में गुरूता कवि की प्रतिभा और बौद्धिक सम्पन्नता से आती है। 'साकेत' में ऐसी गुरूता और सम्पन्नता का अभाव नहीं है। अतः गुप्त जी की काव्य–प्रतिभा महाकाव्य की ऊँचाई के निर्वाह के लिए यथेष्ट है।

2.3.7 भाषा–शैली

साकेत की भाषा में ऐसे विपुल स्थल हैं जहां भाषा की प्रौढ़ता और प्रवाहपूर्ण स्थिति देखने योग्य है। यद्यपि महाकाव्य की भाषा में जैसी गम्भीरता शक्तिमता उदात्तता प्रवाहपूर्णता प्रथा तीव्रता होती है। साकेत की भाषा में वैसी शक्ति नहीं है। 'साकेत' की भाषा में कलात्मक प्रौढ़ता का अभाव है क्योंकि यह खड़ी बोली के निर्माण–काल की भाषा है। इसलिए साकेत की भाषा का सौन्दर्य नवीनता में है, प्रौढ़ता में नहीं है। साकेतकार के भाषा आदर्श पर द्विवेदीकालीन चेतना का कड़ा पहरा है, इसलिए 'साकेत' की भाषा में उदात्तता सम्भव है, परन्तु कलात्मक अवधान की भाषा की खोज निरर्थक है। 'प्रिय प्रवास' की भाषा में रूक्षता है, 'कामयानी' की भाषा में कमनीयता तथा कोमलता है, 'साकेत' की भाषा में सरलता तथा भावानुकूलता है। 'कामायनी' की भाषा में लक्षणा और व्यंजना की प्रधानता है, इसलिए उसकी भाषा में उदात्तता के साथ ही गाम्भीर्य है। 'साकेत' की भाषा अभिधामूलक है। अतः उसमें गोपनीयता तथा गम्भीरता कम है। कहीं–कहीं तो ऐसा लगता है कि पद्य की जगह गद्य का प्रयोग हो गया है। उदाहरण स्वरूप पंक्ति द्रष्टव्य है–'बहन धैर्य का अवसर है, वह बोली, अब ईश्वर है' में गद्य का ही स्वर है।

वैद्धिक चेतना के अभाव में गुप्त की भाषा में बौद्धिक निर्वाह की क्षमता नहीं है अतः उनकी भाषा में भी सहजता और भावानुकूलता है। गुप्तजी की भाषा में ऐसी बौद्धिक चेतना का स्वर नहीं आ पाया है। 'मानस' के साक्ष्य पर जिन पंक्तियों का निर्माण हुआ है, उनके अर्थ और प्रभाव – सौन्दर्य की रक्षा करने में भी साकेतकार रीत गया है। 'लग गयी आग सी सौमित्त भड़के अधर फड़के प्रलय धन तुल्य तड़के, में तुलसीदास के रदपट फड़कत नैन रिंसौंहे की भाव ध्वनि है। लेकिन शब्दयोजना के विपरीत आचरण से रस–निष्पति की सारी सम्भावनाएँ क्षत–विक्षत हो गयी है। रौद्र रस का सारा परिवेश आहत हो गया है। मानस–मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप' में रूपक सम्यक निर्वाह तो किया गया है लेकिन ऊर्मिला को आरती बनाकर कवि ने आरती के अस्तित्व को शंकाग्रस्त बना दिया है।

'सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ'

'किन्तु समझो रात का जाना हुआ'

इन पंक्तियों में प्रकृति का रम्य रूप नहीं उभर पाता है। साकेत' की भाषा का मूल्यांकन प्रथम काव्योत्थान युग की भाषा के स्वरूप को दृष्टि में रखकर किया जाना चाहिए। 'साकेत' की भाषा की सादगी और

सहजता द्विवेदीकालीन भाषा–नियोजन के आदर्श के अनुकूल है। द्विवेदी जी के नेतृत्व में गुप्तजी ने अपनी भाषा का संस्कार किया था, इसलिए उनकी भाषा से गाम्भीर्य, कोमलता, रागात्मकता तथा गोपनीयता की माँग करना समीचीन नहीं है। डॉ० कमलाकान्त पाठक का कहना है कि 'साकेत' की शैली का महत्व इस रूप में देखा जायेगा कि वह अपने युग की सर्वोत्कृष्ट शैली है पुनरुत्थान– युग की शैलीगत देन है। साकेत का रचना–विधान, छन्दों पर ऐसा विपुल अधिकार, भाषा का ऐसा शुद्ध व्यवहार तथा शैली के प्रसंगानुरूप और भावानुकुल आवर्त्त विवर्त्त आधुनिक काव्य में क्या दो चार अन्य स्थानों पर उपलब्ध होंगे ? निश्चय ही नहीं। अतएव युग के प्रभाव को गुप्तजी का दोष नहीं माना जा सकता, यह बात बिल्कुल ही उपयोगी है कि 'साकेत' की भाषा की त्रुटि युग की अधिक है साकेतकार की कम। साकेतकार की विशेषता है कि उसने अवधी और ब्रजभाषा के छन्दों को सफल ढंग से हिन्दी में उतार दिया है। 'छन्द भाषा के ध्वनि–स्वरूप को गठित करता है।' 'छन्द विपुलता के कारण ही 'साकेत' की भाषा में नाद–सौन्दर्य मिलता है। 'ढलमल ढलमल चंचल अंचल' से नदी की चंचलता और निरन्तर निकलने वाली ध्वनि का ज्ञान शब्द–नियोजन से ही हो जाता है। 'दरसो परसो धन, बरसों में अदभुत नाद–सौन्दर्य निहित है। 'साकेत की भाषा में प्रवाह की कमी इसलिए दिखलायी पड़ती है कि उसमें सामाजिक प्रयोग की प्रचुरता हैं। 'रूदन्ती विरहिणी' कहने से ही भाव और रस आहत हो जाता है। सामासिक शब्दों की प्रचुरता के कारण ही गीतों की प्रभावान्विति तथा प्रवाहपूर्णता पर आघात पहुँचता है।

2.4 निष्कर्ष

अतः कह सकते हैं कि महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर साकेत एक सफलतम कृति है। निसंकोच इसे आधुनिक युग की उत्कृट महाकाव्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

2.5 कठिन शब्द

1. सर्गान्त
2. प्रभावन्विति
3. कार्यान्विति
4. अविच्छिन्नता
5. अभिप्रेत
6. अभीष्ट
7. अतिशय
8. उत्कृष्ट

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1. साकेत के महाकाव्यत्व पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्रश्न 2. महाकाव्य के तत्वों पर साकेत की समीक्षा कीजिए।

_____

_____

_____

प्रश्न 3. साकेत की भाषा शैली पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

प्रश्न 4. साकेत सामाजिक जीवन का दस्तावेज़ है, स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

2.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. साकेत : मैथिलीशरण गुप्त
2. साकेत : एक अध्ययन – डॉ. नगेन्द्र
3. मैथिलीशरण गुप्त : एक मूल्यांकन – राजीव सक्सेना

उर्मिला का विरह–वर्णन

3.0 रूपरेखा

3.1 उद्‌देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 उर्मिला का विरह वर्णन

3.4 निष्कर्ष

3.5 कठिन शब्द

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.7 संदर्भ ग्रन्थ

3.1 उद्‌देश्य

इस आलेख के अध्ययनोपरांत आप–

- उर्मिला से अवगत होंगे।
- उर्मिला के विरह को समझ पाएंगे।
- रामकाव्य की नारी पात्रों में उर्मिला विशेष स्थान रखती है, इससे अवगत होंगे।
- उर्मिला के सशक्त चरित्र को समझ पाएंगे।

3.2 प्रस्तावना

साकेत मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित रामकथा पर आधारित महाकाव्य है जिसमें कवि ने रामकथा की उपेक्षित पात्र उर्मिला को केन्द्र में रखकर कथावस्तु का निर्माण किया। साकेत के नवम सर्ग में उर्मिला का

विरह वर्णन कवि ने बड़े मनोयोग से किया है। उसके विरह वर्णन में मार्मिकता, सजीवता एवं विरह–व्यथित हृदय की टीस व्याप्त है।

3.3 उर्मिला का विरह वर्णन

विरह वर्णन का सम्बन्ध भावाभिव्यंजना, प्रसंग निर्माण और वस्तु स्थापना के साथ है। विरह की आन्तरिक स्थिति भाव है और बाह्य विन्यास उसका वस्तुनिष्ठ रूप है। साकेत में जहाँ उर्मिला के विरह में भाव गहनता है, वहाँ वर्णनात्मकता तथा परम्परा के प्रति आकर्षण भी है। डॉ० गोविन्दनारायण शर्मा ने ठीक ही कहा है कि विरह वर्णन की प्राचीन परिपाटी और आधुनिक मनोवैज्ञानिक शैली का साकेत में सुन्दर समन्वय दिखलायी देता है। प्राचीन परिपाटी के अनुसार विभिन्न ऋतुओं से सम्बन्ध रखने वाले दृश्य उद्दीपन भावों के सम्बंध में विरहिणी को प्रतिकूल दिखलाई देते हैं किन्तु साकेत में उर्मिला का हृदय और इन दृश्यों की भावना समान है। विरहिणी उर्मिला की मनोदशा के अनुकूल ही विविध ऋतुओं का वर्णन हुआ है। उर्मिला और प्रकृति एक दूसरे से सहानुभूति प्रकट करती हुई दिखलाई पड़ती हैं। तात्पर्य है कि उर्मिला के विरह–वर्णन में रीतिकालीन परम्परा का अन्धनिर्वाह नहीं हुआ हैं। विरह–वर्णन पद्धति में प्राचीनता के चिह्न हैं। किन्तु भाव, चरित्र और मनोदशा की स्थितियों में नयापन भी है। मुक्तक और प्रगीत के माध्यम से विप्रलंभ श्रृंगार का चित्रण परम्परा से विलग होने की स्पष्ट ध्वनि है। डॉ० कमलाकांत पाठक का कहना ठीक है कि 'साकेत के विरह में न प्राचीन पद्धति को ज्यों–का–त्यों ग्रहण किया गया है, न नवीन मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म चित्रण पद्धति तथा वेदना की अर्थवर्ती विकृति का प्रभाव व्यंजक सम्पूर्ण स्वीकार'।

परम्परा के तिरोहन का भाव तो तब अधिक साफ होता है, जब उर्मिला लताओं, विहंगों के प्रति संवेदनशील होकर कहती है :–

सींचे ही बस मालिने, कलश ले कोई न कर्त्तरी
फूल फलें यथेच्छ बढ़के, फैलें लतायें हरी।

इसके विपरीत सूर की नायिका तो मधुबन को अपनी ही तरह झुलस जाने का आदेश देती है–

मधुवन तुमकत रहत हरे
विरह वियोग श्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे ।।

उर्मिला के कथन में तीव्रबोध की संवेदनशील चेतना है और सूर की गोपियों के वचन में स्पर्श भाव है। इस प्रकार उर्मिला विरह में भी मानवीय संवेदना से परिपूर्ण होकर दूसरे के सुख दुःख का ध्यान रखती है :–

बनाती रसोई, सभी को खिलाती,
इसी काम में मैं आज तृप्ति पाती।

सामूहिक चेतना के दायित्व से सपन्न उर्मिला के विरह में दृष्टि–विस्तार है, परम्परा–वद विरह–वर्णन में दृष्टि–सीमितता है।

उर्मिला के व्यक्तित्व पर नव–बोध की चेतना का प्रभाव है। इसलिए वह ऐसी चुनौतियों का सामना करती है। उद्दीप्त करने वाले तत्त्वों को वह चेतावनी भी देती है :–

जा मलयानिल लौट जा, जहाँ अवधि का शाप।
लगे न लू होकर कहीं, तू अपने ही आप

गुप्त जी के कथन में उक्ति चमत्कार है, लेकिन उर्मिला की दुर्बलता उनके गौरवपूर्ण व्यक्तित्व की शक्ति है :

गया श्वास फिर भी यदि आया,
तो सजीव हैं कृश काया।
हमने उनको रोक न पाया,
तो निज दर्शन भोग गमाया।

यहाँ कृशलता के वर्णन में वेदना है। इसका कारण है कि उर्मिला का विरह गृहस्थ जीवन की मर्यादा से प्रेरित है। खान–पान, पहनना–ओढ़ना, पालित पशुओं की देख–रेख दूसरों की सेवा करना आदि उसके दैनिक कार्य है। वह परिवार की सीमा में आबद्ध प्रेम की वंदिनी है।

उर्मिला का विप्रलंभ सकरुण किन्तु दायित्वपूर्ण है। लक्ष्मण की प्रवास – बेला में बहिर्चेतना, निषाद, मोह, काम, आक्रोश आदि मनोभावों से ग्रस्त होकर भी ईर्ष्या से सर्वथा वंचित है। सीता के प्रति उसके मन में ईर्ष्या की उत्पत्ति नहीं होती, बल्कि वह अपने मन से कहती है कि 'तू प्रिय पथ का विघ्न न बन। इसी प्रकार 'सब गया हाय, आशा न गई' के द्वारा वह विश्वास और निराशा के उच्छ्वास को व्यक्त करती हुई भी सीमा का अतिक्रमण नहीं करती। वह प्रिय आगमन की सम्भावना पर 'सोने चोच तोहे बाँधी देब बायस' की मनौती नहीं करती, बल्कि उसका व्यथित मन 'प्रिय फिरो, फिरो हा फिरो फिरो।' 'न इस मोह की धूम से घिरो' की प्रार्थना करता हुआ संकल्प जीवी लक्ष्मण के कर्मनिरत पथ को आलोकित करता है। 'अरि सुरभि, जा लौट जा, अपने अंग सहेज' में पंकिल भावुकता एवं रीतिकालीन ऊहात्मकता का स्वरसंधान हुआ है फिर भी उसमें छाती सौं छुआय दिया बाती क्यों न बारी लौ, की दैहिक एवं कलात्मक रुग्णता नहीं है। साकेत के विरह–वर्णन में शारीरिक चेष्टाओं का विदग्ध विलास नहीं है, हृदय की कोमल भावनाओं का सूक्ष्म मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

गुप्त जी ने ऐसी हास्यपूर्ण पंक्तियों की सृष्टि नहीं की जिससे संवेदना के विस्तार की समस्त सम्भावनाएँ निरस्त हो जाएँ। उसमें आत्म विश्वास के साथ दैन्य का भाव भी है किन्तु सन्तोष भी है कि 'तुम याद करोगे,

मुझे कभी।' डॉ० कमलाकान्त पाठक का मत है कि 'चित्रकूट मिलन जितना क्षणिक है उतना ही आवेशपूर्ण। उस समय की मनोकथा व्यंजित है वर्णित नहीं।' उर्मिला के विरह में विचारों और अनुभूति की सघनता उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है। गुप्तजी ने नित्य जीवन की घटनाओं को तथा क्रिया व्यापारों को विरह की प्रणाली में ऐसा मिला दिया है कि विरह की सारी और अस्वाभाविक संवेदनपूर्ण एवं अनुभूति सम्पन्न हो गयी है। यद्यपि षट्–ऋतुओं का भी वर्णन हुआ है परन्तु प्राचीन परम्परा का उपयोग नये ढंग से किया गया है, फलस्वरूप उर्मिला अधिक स्वकेन्द्रिता नहीं हो पायी है। वियोग में उर्मिला का जीवन तापमच हो गया है। ऋतु का सान्निध्य उसके अभावग्रस्त जीवन का एक सहारा, अथवा पूरक साधन बन गया है जिसके सहारे वह अपने को संयोजित करती है। उसके मन में कोक के प्रति आत्मीयता और मकड़ों के प्रति दया का भाव उदित होता है। बड़े से लेकर लघु तक उसकी दृष्टि में सम्मान एवं सहानुभूति पाने वाले हैं। उर्मिला की ऐसी मनोभावना उसे दूसरी विराहिणियों से विलग कर देती है। इसका कारण है कि वियोग में उसकी अन्तर्वृत्ति कोमल उदार एवं संवेदनशील हो गयी है। यही कारण है कि नवम सर्ग के अंत में उर्मिला के कलात्मक संस्कार उभरते हुए दिखाई पड़ते हैं। परम्परागत विरह भावना में ऐसी कलात्मक भावना का अभाव है। जब जल चुकी विरहिणी बाला का चित्र ऊर्मिला प्रस्तुत करती है तब उसके भीतर का बैठा हुआ कलाकार अपनी पूरी अनुभूति के साथ दिखाई पड़ता है। अतः साकेत के विरह–वर्णन में परम्परा की जहाँ स्वीकृति है वहाँ तिरोहन भी है और मौलिक उपकरण भी मिल जाते हैं।

साकेत में उर्मिला के विरह–वर्णन में पारम्परिक विरह–वर्णन को भी स्वीकारा गया है। आचार्यों ने विरह की दस अवस्थाओं की चर्चा की है। अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि जड़ता और मरण ही विरह की दशायें है। साकेत में गुप्त जी ने इन दशाओं का उल्लेख किया है।

अभिलाषा

कैसी हिलती डुलती अभिलाषा है कली, तुझे खिलने की !
जैसी मिलती जुलती उच्चाशा है भली मुझे मिलने की !

विरह में मिलने की अभिलाषा कितनी तीव्र होती है ! कली पुष्पित होने की अभिलाषा में पल रही है और विरहिणी उर्मिला मिलन की उच्चाशा में जी रही है। यानी विरह–विवग्ध हृदय मिलन की अभिलाषा का प्रसार प्रकृति में देख रहा है। पूर्ण पुष्पिता होकर ही कली आस्वाद्य बनती है और मिलन के सीमित क्षणों में ही तृप्ति का सुख निहित है।

चिन्ता

आँखों में प्रिय – मूर्ति थी, भूले थे सब भोग,
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम–वियोग

आँखों में रेखांकित प्रिय की मूर्ति संबल दे रही थी। परिणामस्वरूप भोग का विस्मरण हो चुका था।

उसके मन की डोर नेत्रांकित मूर्ति से बँध चुकी थी। परन्तु चिन्तनीय दशा तब हो गयी जब मूर्ति के 'योग' से प्रिय का वियोग अधिक सालने लगा। बात भी ठीक है, मूर्ति के 'योग' में वह सुखद संवेदना कहाँ जो वियोग की दारुणता को घटा सके।

स्मृति

सखि, बिखर गई हैं कलियाँ,
कहाँ गया प्रिय झुकामुकी में करके वे रंगरलियाँ ?
भुला सकेंगी पुनः पवन को अब क्या इनकी गलियाँ ?
यही बहुत, ये पचें उन्हीं में जो थी रंग स्थलियाँ ?

विरह की दग्धमान् दशा में कभी–कभी स्मृति सुख का साधन भी बनती है और तड़प का विधान भी रचती है। पवन के संग विहार करने वाली कली अब बिखराव की स्थिति में हैं। अपनी चंचलता के लिए बदनाम निष्ठुर पवन कली को मधुरातिमधुर गली में आना भले ही भूल जाए, किन्तु रंग–स्थली की रंग–रलियों की याद तो ताजा है ही। कली और विरहिणी दोनों मिलन की स्मृति में जी रही है।

व्याधि

शिशिर न फिर गरि–वन में
जितना माँगे, पतझड़ दूँगी मैं इस निज नन्दन में,
कितना कम्पन तुझे चाहिए ले मेरे इस तन में।
सखी कह रही पांडुरता का क्या अभाव आनन में।

शरीर का कंपित होना और मुखश्री का पीलापन व्याधि का व्यंजक है। उर्मिला के विरह–कानन में शिशिर का कोई प्रयोजन नहीं। वह तो अपने ही विरह ताप में पीली पड़ गयी है, मुखछवि मलिन हो गयी है।

प्रलाप

जा मलयानिल, लौट जा, जहाँ अवधि का शाप,
लगे न लू होकर कहीं तू अपने को आप
भ्रमर इधर मत भटकना ये खट्टे अंगूर,
लेना चम्पक गंध तुम, किन्तु दूर ही दूर।

मलयानिल लौट जाए इसलिए कि विरह की अवधि में उर्मिला गिरत है। कहीं विरहिणी के दग्ध शरीर का संस्पर्श पा मलयानिल भी न गरम हो जाए और उसे भी अपना ही गर्मी से दग्ध न होना पड़े जिस प्रकार उर्मिला आन्तरिक विरह–तप में तिल–तिल कर जल रही है। भ्रमरों के लिए भी वह खट्टे अंगूर के सदृश है।

गुणकथन

सखी आप ही आप को हँसे–
बड़े वीर थे, आज अच्छे फँसे!

हंसी पैं, अजी मानिनी तो गई,
बधाई! मिली जीत यों ही नई!

लक्ष्मण का वीरत्व श्लाघ्य है। परन्तु यह प्रशंसनीय वीरता भी फँस गयी। वीरता का फँसना और मानिनी के मान का प्रशमन कलात्मकता से ओत–प्रोत है।

जड़ता

पैठी है तू षट्पदी, निज सरसिज में लीन,
सप्तपदी देकर बैठी मैं गतिहीन !

भौंरा तो कमल दलों में जड़ीभूत हो गया है। भ्रमर की जड़ता संयोग की दुःखद संवेदना की जड़ता है और उर्मिला की जड़ता विरह की दुःखद संवेदना की जड़ता है।

उन्माद

स्वजनि, क्या कहा–वे यहाँ कहाँ ?

तदपि दीखते हैं जहाँ तहाँ

यथार्थ उन्माद, भ्रान्ति है ?

ठहरे तो मिटा क्षोभ, शान्ति हैं।

उन्मत की–सी उर्मिला कह उठती है कि सखी मेरे प्रियतम यहाँ कहाँ हैं। तथापि वे यहाँ–वहाँ दिखाई भी पड़ते हैं। वस्तुतः लक्ष्मण तो क्या लक्ष्मण की छाया भी वहाँ नहीं है, लेकिन वह उनकी प्रतिच्छवि तो देखती ही है। उन्माद भ्रान्ति तो है पर न तो मन का क्षोभ मिटता है और न शान्ति मिलती है।

मरण

यह शरीर लो, प्राण ये बुझे
धर न हा सखि, छोड़ दे मुझे।

यह सत्य है कि विरह की अवस्था मरण का तो साकेत में उल्लेख नहीं है, किन्तु मरण के वरण की ध्वनि तो है ही। उर्मिला के प्राण बुझ रहे हैं, शरीर छूट–सा रहा है। सखी धीर धरने का प्रयत्न करती भी है तो

स्वयं उर्मिला द्वारा वह बरज दी जाती है। वह मरण में विरह का अवसान ढूंढती है। लेकिन इन दशाओं के वर्णन में परम्पराबद्धता भी है और स्वच्छन्दता भी। जैसे उर्मिला अर्द्ध–मूर्छित अवस्था में अपना भावोद्‌गार व्यक्त करती है। यह रूढ़ स्थिति नहीं है, बल्कि मनोवैज्ञानिक है। इसमें बाह्य जटिलता के साथ ही मानसिक द्वन्द्व की अन्तर्धारा भी है।

उर्मिला के विरह में ऊहात्मक स्थिति के चित्र भी मिलते हैं।

ठहर मरी इस हृदय में लगी विरह की आग
ताल– वृन्त से और भी धधक उठेगी आग

इसमें भी ताप विषयक ऊहा का चित्र है जो मतिराम और बिहारी की नायिकाओं की स्थितियों की याद दिला देता है 'लगे न लू होकर कहीं तू अपने को आप' में भी ऊहात्मक चित्र है।

3.4 निष्कर्ष

उर्मिला के विरह–वर्णन में 'अन्तर्बाह्य के सभी पक्षों का उद्‌घाटन हो गया है उसकी आदर्शनिष्ठता, प्रेमनिष्ठता, आवेशमयी मनःस्थिति और परिहत चिन्ता से आकुल अन्तर्मन की स्पष्ट झाँकी मिलती है। उसके विरह में ईर्ष्या नहीं है बल्कि सहानुभूति का अक्षय कोष है जो प्रिय आगमन तक रिक्त नहीं हो पाता। प्रो० केसरी कुमार ने ठीक ही कहा है कि 'उर्मिला के विरह–वर्णन में आदर्श का गौरव है और स्वार्थ का निषेध!' डॉ० कमलाकान्त पाठक के शब्दों में 'अतएव विरह के आयाम विस्तृत और विश्वव्यापी हो गये। तभी विश्व विरह को लेकर दम्पति एक दूसरे के हृदय में समा सके।' अतः उर्मिला के विरह–वर्णन में न तो परम्परा का अन्धा अनुकरण है और न ही निषेध, बल्कि परम्परा और मौलिकता के सन्धिस्थल पर उर्मिला का विरहिणी रूप खड़ा है। साकेत के विरह–वर्णन में दैहिक ऐश्वर्य से अर्न्तमन की अनुभूति को अधिक गरिमापूर्ण समझा गया है। इसमें परम्परागत भावकल्पना और काव्यरूढ़ि का तिरोहन हुआ है तथा नवजागरण के परिसर में अन्तर्मन की व्यथा को तर्कपुष्ट करके विश्लेषित किया गया है।

3.5 कठिन शब्द

1. स्वच्छन्दता
2. आदर्शनिष्ठता
3. व्याधि
4. व्यंजक
5. कृश
6. उच्छवास
7. शिशिर
8. तिरोहित
9. सान्निध्य
10. भावकल्पना

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1. साकेत में अभिव्यक्त उर्मिला के विरह वर्णन पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्रश्न 2. उर्मिला के चरित्र चित्रण पर लेख लिखिए।

_____

_____

_____

प्रश्न 3. साकेत में चित्रित विरह की दशाओं को विवेचित कीजिए।

_____

_____

_____

3.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. साकेत : मैथिलीशरण गुप्त
2. साकेत : एक अध्ययन – डॉ. नगेन्द्र
3. मैथिलीशरण गुप्त : एक मूल्यांकन – राजीव सक्सेना

मैथिलीशरण गुप्त : नारी अस्मिता

4.0 रुपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 गुप्त जी का नारी विषयक दृष्टिकोण

4.3.1 नारी शिक्षा

4.3.2 नारी स्वतंत्रता

4.3.3 नारी विवाह से सम्बन्धित संकुचित मानसिकता

4.3.4 नारी में कर्तव्यनिष्ठा का भाव

4.3.5 नारी का स्वाभिमानी रूप

4.3.6 नारी का विरहिणी रूप

4.3.7 नारी के विविध पारिवारिक रूप

4.4 सारांश

4.5 कठिन शब्द

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप :–

1. साहित्य के अन्तर्गत नारी विषयक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. मानव जीवन में नारी की भूमिका और महत्व को जान सकेंगे।
3. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के नारी संबंधी दृष्टिकोण से अवगत होंगे।

4.2 प्रस्तावना

नारी चेतन जगत में विधाता की अत्यंत रहस्यमयी रचना है। वह मानव समाज की आधारशिला और उसकी अर्द्धांगिनी है। परिस्थिति विशेष में नर नारी को और नारी नर को किसी भी दृष्टि से क्यों न देखें, वे वास्तव में एक दूसरे के पूरक हैं, अभिन्न हैं और उनका संबंध शाश्वत है। सृष्टि के आदि से लेकर समाज के मूल में उनकी अहम् भूमिका रही है। अर्धनारीश्वर के स्वरूप की कल्पना और अनुभूति से नर और नारी की एकात्मकता का ही बोध होता है।

संसार के साहित्य में नारी–विषयक विचारों की उपलब्धि इतनी सहज है कि उसकी विशेष खोजबीन नहीं करनी पड़ती। नारी को जहाँ एक तरफ शक्ति, सहचरी, रमणी तथा आराध्या के रूप में देखा जाता रहा, वहीं उसे माया और दुर्भेद्य पहेली के रूप में भी परखा गया। नर ने उसे कभी श्रद्धा और स्नेह की दृष्टि से देखा है और कहीं शंकित हृदय होने पर उसकी दृष्टि वक्र भी रही है; साहित्यकारों अथवा विचारकों ने कभी उसकी पूजा अथवा आदर को आवश्यक बताते हुए उसमें समस्त आदर्शों की प्रतिष्ठा की है, तो कभी उसकी भर्त्सना भी की है। मैथिलीशरण गुप्त एक ऐसे विरले कवि हैं जिन्होंने नारी जीवन के उदात्त पक्षों को अपनी लेखनी से उज्जवल बनाकर उपस्थित किया है। गुप्त जी के नारी विषयक दृष्टिकोण को आगे हम विस्तारपूर्वक समझेंगे।

4.3 गुप्त जी का नारी विषयक दृष्टिकोण

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि और भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक हैं। उन्होंने अपने हृदय की पवित्रता और विशालता का परिचय नारी के संबंध में अपने दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति द्वारा दिया है। उनके हृदय में नारी के प्रति सम्मान और श्रद्धा का भाव है। वे मानते हैं–

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता''

इनके सम्पूर्ण लेखन में यह भावना पल्लवित तथा पुष्पित हुई है। गुप्त जी का विचार है कि नारी ही किसी परिवार या समाज को सुधार सकती है। निर्माण तथा समाज सुधार की बात नारियों के सहयोग से ही

सम्भव है। उनका नारी संबंधी दृष्टिकोण 'साकेत' ही नहीं अपितु अन्य रचनाओं में भी स्थान–स्थान पर स्पष्ट हुआ है। नारी पर अन्याय–अत्याचार होते देखकर वे कभी भी चुप नहीं रह सके हैं। नारी को वे पुरूष के समान ही अधिकारिणी मानते हैं। उनकी नारी की अधिकार भावना में कहीं भी पुरूष से स्पर्धा करने की भावना नहीं है और न ही कहीं कलह अथवा संघर्ष है। यदि है तो केवल न्यायोचित अधिकार की माँग है। इस माँग में हार्दिकता का समावेश है और गुप्त जी ने इस माँग और अधिकार की प्रतिष्ठा पर्याप्त सहानुभूति और प्रभावपूर्ण ढंग से की है। अपने साहित्य में उन्होंने राधा, कुब्जा, शकुन्तला, सीता, उर्मिला, कौशल्या, सुमित्रा, माण्डवी, कुन्ती, गान्धारी, विधृता, हिडिम्बा आदि के माध्यम से नारी के विभिन्न उज्जवल पक्षों पर प्रकाश डाला है।

गुप्त जी की नारी पुरूष के कर्तव्य भार में समभाग लेने वाली अर्द्धांगिनी है, शिक्षिता है, आनन्ददायिनी है, विषम एवं नैराश्यावस्था में सांत्वना देने वाली है, त्यागमयी है, प्रेरक शक्ति है, वात्सल्यमयी है तथा इसी प्रकार के उन सभी उदात्त गुणों से युक्त है जो निश्चय ही प्रशंसनीय और अनुकरणीय हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्त जी का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण न तो भक्तिकालीन कवियों के समान है और न रीतिकाल से प्रभावित होकर नारी को वासना की मूर्ति के रूप में देखना ही उन्हें स्वीकार है। नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण गुणान्वेषी और व्यापक है। उनकी नारी पुरूष से कहीं भी हीन नहीं है, उसकी महत्ता पुरूष को प्रायः स्वीकार करनी पड़ी है और विभिन्न अवस्थाओं में वह कहीं बहिन, कहीं पत्नी, कहीं पुत्री, कहीं माता, कहीं बहू और कहीं भाभी के रूप में विशिष्टता प्राप्त करती है।

गुप्त जी के 'साकेत' के प्रणयन का प्रारंभ तो द्विवेदी युग में ही हुआ था किंतु उसकी परिसमाप्ति छायावाद के उत्तर काल में हुई। इस अवधि में नारी के प्रति जो युग का दृष्टिकोण था उससे साकेतकार का भी प्रभावित होना बिल्कुल स्वाभाविक है। साकेत की कथा यद्यपि अति प्राचीन कथा है, तथापि उसमें चित्रित नारी पात्रों के आचरण में हमें आधुनिकता का स्पष्ट बिम्ब मिलता है। 'साकेत' की रचना एक विशेष प्रयोजन से हुई है और वह है उर्मिला एवं कैकयी के चरित्रों को प्रकाश में लाने का प्रयोजन। कवि ने इन दोनों नारियों की व्यथा–कथा पर मनोवैज्ञानिक ढंग से विचार किया है और फिर उनका यथासम्भावित हल निकाला है। कवि की विचार–प्रक्रिया पर स्पष्टतः आधुनिक युग का प्रभाव है।

गुप्त जी के साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने गौण ऐतिहासिक स्त्री पात्रों को अन्य साहित्यकारों की अपेक्षा सकारात्मक दृष्टि से देखा और उन्हें आदर्श रूप में सामने लाने का प्रयास किया। अपने नारी संबंधी विचारों को व्यक्त करते हुए गुप्त जी ने नारी के सम्पूर्ण जीवन को जिन दो पंक्तियों में व्यक्त किया है, वे उनकी नारी भावना को मार्मिकता से अभिव्यक्त करती हैं,

''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी''

गुप्त जी के नारी संबंधी दृष्टिकोण को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया गया है :–

4.3.1 नारी शिक्षा

मनुष्य का सर्वांगीण विकास शिक्षा से ही संभव है। जिस समाज में नर के साथ नारी भी शिक्षित होगी वह समाज अधिक उन्नतिशील होगा तथा वही समाज आदर्श समाज कहा जा सकता है। तत्कालीन समाज सुधारकों की ही भांति गुप्त जी भी यह मानकर चले हैं कि नारी की उन्नति के लिए सबसे पहली और अनिवार्य आवश्यकता उसको शिक्षित करना है। गुप्त जी की दृष्टि में स्त्री–शिक्षा इस युग के मस्तिष्क की प्रमुख समस्या है। देश की उन्नति और संतान की उत्तमता नारी की सुशिक्षा पर ही निर्भर है। नारी शिक्षा का पक्ष ग्रहण करते हुए और योग्य एवं आदर्श भारतीय नारियों का गौरव–गान करते हुए गुप्त जी ने 'भारत–भारती' में कहा था–

''क्या कर नहीं सकतीं भला यदि शिक्षिता हों नारियाँ ?
रण–रंग, राज्य, सुधर्म रक्षा कर चुकी सुकुमारियाँ!
लक्ष्मी, अहल्या, वायजाबाई, भवानी, पद्मिनी
ऐसी अनेकों देवियाँ हैं आज जा सकती गिनी।''

नारी में स्थित दोषों का भी कारण गुप्त जी ने वर्तमान सामाजिक स्थिति तथा अशिक्षा को ही माना है। पुरूषों ने ही नारी को अशिक्षित रखा है। वह स्वयं तो शिक्षित रहते हैं किंतु अपनी पत्नियों को अशिक्षा रूपी अंधकार में रखते हैं। इस कारण नारी शिक्षा का प्रबल समर्थन करते हुए गुप्त जी ने स्पष्ट रूप से कहा है–

''विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आएगी
अर्धांगिनियों को भी सु–शिक्षा दी न जब तक जायेगी।''

गुप्त जी ने इसी विश्वास के कारण उस समाज को आदर्श माना है जिसमें नर और नारी दोनों शिक्षित हों। 'साकेत' के समस्त पौर जन शिक्षित थे–

''स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट, उद्योगी सभी,
बाह्यभोगी, आन्तरिक योगी सभी।''

उर्मिला चित्रकला में अत्यंत पटु थी। उसने अभिषेक का काल्पनिक चित्र बनाकर लक्ष्मण को क्षण मात्र में आश्चर्यचकित कर दिया–

''चित्र भी था चित्र और विचित्र भी,
रह गये चित्रस्थ से सौमित्र भी।''

अपने उपवन में वह पुरबाला–शाला खुलवाकर शिक्षिका बनने का भी विचार प्रकट करती है–

''मैं ललित कलाएँ भूल न जाऊँ वियोग वेदन में
सखि पुरबाला–शाला खुलवा दें क्यों न उपवन में।''

गुप्त जी के नारी–विषयक आदर्श को समझने के लिए निम्न पंक्तियां विशेष रूप से उपयोगी हैं–

''घर का हिसाब–किताब सारा है उन्हीं के हाथ में,
व्यवहार उनके हैं दयामय सब किसी के साथ में।
वे पाक–विद्या विशारदा हैं और वैद्यक जातीं
सबको सदा सन्तुष्ट धर्म अपना मानती।''

गुप्त जी नारी–शिक्षा के घोर समर्थक रहे हैं। उनका निश्चित मत है कि नारी को शिक्षा का उतना ही अधिकार प्राप्त होना चाहिए जितना पुरूष को प्राप्त है तभी समाज की उन्नति सम्भव है।

4.3.2 नारी स्वतंत्रता

गुप्त जी नारी स्वतंत्रता का अर्थ अबाध स्वतंत्रता अथवा उच्छृंखलता नहीं मानते। वे नारी की सर्वक्षेत्रीय योग्यता को तो स्वीकार करते हैं, परन्तु उनका यह भी विचार है कि नारी के शारीरिक एवं प्राकृतिक विकास में ही एक परिवर्तन है, जिसके कारण उनका कार्यक्षेत्र पुरूष से अलग हो जाता है। इस कारण गुप्त जी का मत है कि नारी सामान्यतया अपने को पारिवारिक योजनाओं तक ही सीमित रखे, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर सामाजिक एवं राष्ट्रीय योजनाओं में भी पीछे न रहे। अतः उन्होंने भारतीय पृष्ठभूमि में ही नारी के व्यक्तित्व के विकास की प्रतिष्ठा की है।

गुप्त जी का विश्वास है कि नारी वास्तव में दीन नहीं है। उसमें अनेक उदात्त गुण हैं। केवल सामाजिक रूढ़ियों एवं मान्यताओं ने उसकी स्थिति को करूण बना दिया है। अतः यदि उसे समुचित स्वतंत्रता दी जाए तो अपनी समस्याओं का समाधान वह स्वयं ही कर सकती है। उन्होंने अपने नारी पात्रों को इस बात की पूर्ण स्वतंत्रता दी कि वे अपनी दुखद एवं जटिल परिस्थितियों के प्रति विद्रोह कर सकें। विधृता, उर्मिला, सीता, द्रौपदी जैसी नारियाँ गुप्त काव्य में नारी स्वातन्त्र्य का सन्देश लेकर आई हैं। नारी द्वारा पति को परमेश्वर मानने के सिद्धान्त ने ही पुरूष की शासक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया। किन्तु आज यह मानदण्ड नहीं रहा है। 'द्वापर' की विधृता अपना अधिकार जताने वाले पुरूष को स्पष्ट शब्दों में चुनौती देती है–

''जाती हूँ, जाती हूँ अब मैं,
और नहीं रूक सकती।
इस अन्याय–समक्ष, मरूँ मैं,
कभी नहीं झुक सकती।''

कवि ने विधृता में नारी के अधिकारों तथा व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का जयघोष किया है। नारी के इस स्वतंत्र व्यक्तित्व के कारण ही गुप्त जी की दृष्टि में नारी की परिभाषा किंचित भिन्न है। उनका विश्वास है कि नारी घर के बाहर भी सफलतापूर्वक कार्य कर सकती है। आज की नारी स्वाभिमानी है। वह परावलम्बिनी न होकर स्वावलम्बिनी बनना अधिक श्रेयस्कर मानती है। 'पंचवटी' की सीता अपने शारीरिक श्रम से किये गये कार्य के फल की प्राप्ति में ही सच्चा सुख मानती है। लक्ष्मण द्वारा कही गई पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं।

''अपने पौधों में जब भाभी
भर–भर पानी देती हैं,
पाती हैं तब कितना गौरव
कितना सुख कितना सन्तोष
स्वावलम्बन की एक झलक पर
न्यौछावर कुबेर का कोष।''

'साकेत' की सीता वन में निवास करते हुए भी दुखी नहीं होती क्योंकि वन में उसे अपना कार्य स्वयं करने का अवसर प्राप्त है। वह बड़े गर्व से कहती है–

''औरों के साथ यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रम वारि बिन्दुफल स्वास्थ्यशुक्ति फलती हूँ,
अपने आँचल में व्यंजन आप झलती हूँ।''

आत्मनिर्भरता तथा आत्मसम्मान का जागरण आज की नारी के जीवन में अनिवार्य है। समाज में प्रचलित इस धारणा का उसे खण्डन करना है कि पुरूष पर ही उसका जीवन पूर्णतया निर्भर है। वस्तुतः उसे स्वतंत्र अस्तित्व की अपेक्षा है जो आवश्यकता पड़ने पर अपने पैरों पर खड़े होने की क्षमता से मण्डित हो।

4.3.3 नारी विवाह से सम्बन्धित संकुचित मानसिकता

जिस आत्मिक एकता के पवित्र उद्देश्य को लेकर विवाह की संस्था का प्रादुर्भाव हुआ था, आज उसे वह पूर्ण कर सकने में असमर्थ है क्योंकि भारतीय समाज में प्रचलित अनमेल विवाह, बाल विवाह जैसी अनेक कुप्रथाएँ प्रचलित हो गईं जिससे विवाह का उद्देश्य ही समाप्त हो गया। गुप्त जी ने बाल विवाह, अनमेल विवाह, पुनर्विवाह तथा बहु–विवाह के संबंध में यत्र–तत्र अपने विचार व्यक्त किये हैं। बाल विवाह के संबंध में वे कहते हैं कि कन्या के जन्म लेते ही माता–पिता के लिए कन्या के विवाह की समस्या सबसे अधिक प्रबल हो जाती है। सामाजिक रूढ़ियों से आबद्ध होने के कारण उन्हें कन्या के शीघ्र विवाह की चिन्ता होने लगती है।

उनका ध्यान इस पर तनिक भी नहीं जाता है कि वर की आयु कन्या के अनुकूल है अथवा नहीं। गुप्त जी ने इस सम्बन्ध में कहा है–

''कितना अनिष्ट किया हमारा हाय, बाल्य विवाह ने,
अन्धा बनाया है हमें उस नातियों की चाह ने।''

यही अनमेल विवाह विधवाओं की संख्या बढ़ाने में भी सहायक होता है–

''प्रतिवर्ष विधवा–वृन्द की संख्या निरन्तर बढ़ रही,
रोता कभी आकाश है, फटती कभी हिल कर मही।
हा, देख सकता कौन ऐसे दग्धकारी दाह को ?
फिर भी नहीं हम छोड़ते हैं बाल्य–वृद्ध विवाह को।''

गुप्त जी ने दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिए बहु विवाह प्रथा का विरोध किया है और उसके स्थान पर पतिव्रत तथा पत्नीव्रत पर विशेष बल दिया है। भारतीय समाज में नारी के लिए बहुविवाह की सम्भावनाएँ नगण्य हैं। पुरूष अवश्य ही इस सुविधा से वंचित नहीं है। गुप्त जी पुरूषों को भी यह अधिकार देने के पक्ष में नहीं है। 'पंचवटी' के लक्ष्मण का निम्न कथन उनके इसी दृष्टिकोण की ओर संकेत करता है–

''नारी के जिस भव्य भाव का
स्वाभिमान भाषी हूँ मैं,
उसे नरों में भी पाने का
उत्सुक अभिलाषी हूँ मैं।''

अनमेल विवाह और बहु–विवाह का एक दुष्परिणाम वैधव्य भी है। गुप्त जी की सहृदय आँखों ने वैधव्य से पीड़ित उस नारी को देखा है जिसका सम्पूर्ण जीवन तिरस्कार और उपेक्षा में ही व्यतीत होता है। विधवा को इस स्थिति तक पहुँचाने का दायित्व किस पर है ? गुप्त जी इस प्रश्न का उत्तर देते हुए पुरूष समाज से कहते हैं–

''तुम करो ब्याहों पर ब्याह, पर विधवाएँ भरें न आह
तुम बूढ़े भी विषयासक्त, बनी रहें किंतु विरक्त।''

समाज विधवाओं का प्रायः आदर करता है, उनकी उपेक्षा करता है और उनका जीवन बोझ हो जाता है। इस दुखद स्थिति से बचने के लिए नारियाँ सती होती रही हैं। गुप्त जी को विधवाओं से पूर्ण सहानुभूति है और सती के रूप में जीवन का अन्त उन्हें अरूचिकर है। 'साकेत' में दशरथ की मृत्यु पर रानियों और वशिष्ठ के वार्तालाप द्वारा गुप्त जी ने अपनी इसी भावना को स्पष्ट किया है।

''हाय भगवान क्यों हमारा नाम ?
अब हमें इस लोक में क्या काम ?
भूमि पर हम आज केवल भार,
क्यों सहे संसार हाहाकार ?
क्यों अनाथों की यहाँ हो भीड़ ?
जीव–खग उड़ जाय अब निज नीड़।''

गुप्त जी ने इस बात का अनुभव किया कि भारतीय नारी की वैयक्तिक्ता को संकीर्ण रूढ़िगत परम्पराओं में आबद्ध कर, उसे पुरूष की इच्छा के विरूद्ध एक पग भी चलने में असमर्थ कर दिया है। वह पुरूष से भिन्न अपने अस्तित्व की कल्पना तक नहीं कर सकती है। गुप्त जी ने नारी की दुरावस्था को भली प्रकार समझ कर अपनी रचनाओं में उसका यथासंभव चित्रण किया है।

4.3.4 नारी में कर्तव्यनिष्ठा का भाव

नारी की करूणा, दया, पवित्रता, शान्ति, प्रेम और ममतामयी उदात्त स्वरूप की कल्पना के साथ–साथ उसे अवसरानुकूल अपना कर्तव्य निर्वहण की ओर अग्रसर करना गुप्त जी के काव्य की एक उल्लेखनीय विशेषता है। उनकी अनेक रचनाओं में नारी के उस गौरवमय राष्ट्रीय स्वरूप के भव्य दर्शन होते हैं जहां वह देश–सेवा के व्रत में तत्पर पुरूष की सहचरी और सहयोगिनी एवं पुरूष की प्रेरणा बनकर आई है। वह सैनिकों को प्रेरणा देती है तथा अवसरानुकूल प्रचंड रूप भी धारण कर लेती है। मूलतः गुप्त जी नारी और पुरूष के कर्तव्य क्षेत्र को अलग–अलग मानकर चले हैं किन्तु आवश्यकता तथा परिस्थिति के समय यदि नारी का सहयोग पुरूष के क्षेत्र में वांछनीय और आवश्यक हो जाता है तो गुप्त जी उसके समर्थक ही रहे हैं।

गुप्त जी की यह धारणा है कि आवश्यकता के समय देश को नारी के सहयोग और शक्ति की परम आवश्यकता है तथा नारी को भी राष्ट्रवादी के रूप में राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह करना चाहिए। गुप्त जी के नारी पात्रों में अनेक स्थलों पर इस भाव की अभिव्यक्ति हुई है।

गुप्त जी के काव्य में कैकेयी, सुमित्रा, सीता, उर्मिला, यशोधरा जैसी नारी पात्रों में कर्तव्यनिष्ठा का सर्वाधिक विकास हुआ है। इनमें साहस, शक्ति, वीरता, स्वाभिमान, देशप्रेम, देशसेवा की भावना का भाव अधिक उभरा है। राष्ट्रीय भावना का चरम विकास 'साकेत' में उर्मिला, सीता, कैकेयी तथा सुमित्रा के चरित्रों में प्रतिबिम्बित हुआ है।

संयोगिनी एवं वियोगिनी के अतिरिक्त उर्मिला के व्यक्तित्व का सबसे महत् स्वरूप, उसके नारीत्व का प्रखरतम रूप उसके क्षत्राणी वेश में दृष्टिगोचर होता है। लक्ष्मण को ब्रह्मास्त्र लगने का समाचार ज्ञात होने पर उर्मिला सेना तथा शत्रुघ्न के समक्ष भवानी सदृश आ खड़ी होती है। वह सेना के आगे–आगे माथे पर सिन्दूर

और हाथ में माला लेकर दुर्गारूप धारण कर लंकापुरी की ओर चलने को तैयार हो गई। उस समय उसका रूप देखने योग्य था–

''आ शत्रुघ्न समीप रूकी लक्ष्मण की रानी।
प्रकट हुई ज्यों कार्तिकेय के निकट भवानी
जटा जाल से बाल विलम्बित छूट पड़े थे,
आनन पर सौ अरूण घटा में फूट पड़े थे।''

अर्द्धांगिनी के रूप में नारी जहां अपने पति के सुख–दुख की साथिन है वहां उसके कर्तव्य भी हैं और अधिकार भी। अकेले ही वन जाने का विचार करते हुए राम से 'साकेत' की सीता कहती है–

''समझो मुझको भिन्न न हा!
करो ऐक्य उच्छिन्न न हा!
तुमको दुख हो मुझको भी,
तुमको सुख तो मुझको भी।
० ० ० ० ०
जो गौरव लेकर स्वामी!
होते हो काननगामी।
उसमें अर्द्ध भाग मेरा,
करो न आज त्याग मेरा।''

कैकेयी में भी क्षत्राणी सुलभ तेज की कमी नहीं है। वह अपने पति द्वारा दशरथ के साथ तो समर स्थल गई ही थी पुत्र के साथ भी युद्धभूमि में जाने का उत्साह उसमें कम नहीं है–

''भरत जायेगा प्रथम और यह मैं जाऊँगी,
ऐसा अवसर भला दूसरा कब पाऊँगी ?
मैं निज पति के संग गयी थी असुर–समर में,
जाऊँगी अब पुत्र–संग भी अरि समर में।''

अतः स्पष्ट है कि आवश्यकता पड़ने पर नारी रणस्थल में भी जाती है। कैकेयी दशरथ के साथ युद्ध में गई थी। नारी अपने कर्तव्य का पालन सदैव करती रही है इसमें संदेह नहीं है।

4.3.5 नारी का स्वाभिमानी रूप

गुप्त जी की नारियां सहज, स्वाभिमान एवं दर्प से परिपूर्ण हैं। पति के प्रति अनन्य निष्ठा को लेकर पत्नी मान भी करती है। मान के ही कारण पत्नी पति से विलग रहती है और जब तक पति अनुनय–विनय

नहीं करता तब तक वह अपने मान की रक्षा करती है। मान के ही रूप में नारी अपने स्वाभिमान की भी रक्षा करती है। यशोधरा, विष्णुप्रिया तथा उर्मिला तीनों ही स्वाभिमानी नारियां हैं। वे अर्धांगिनियाँ हैं, इसीलिए उनका पति से अलग व्यक्तित्व नहीं है, उनके सभी भाव–विभाव अपने पति से संबंद्ध हैं। ऐसी स्थिति में अभाव की पीड़ा जब उनको सताने लगती है तब उनके अंदर मान की भावना उदीप्त होती है। विष्णुप्रिया तथा उर्मिला का मान अपने पतियों के प्रति क्षणिक रोष का कारण है। उर्मिला कहती है–

''हाय! सखी, शृंगार ? मुझे अब भी सोहेंगे ?
बरसों की मैं कसक मिटाऊँ, बलि बलि जाऊँ।
मैंने जो वह 'दग्ध–वर्त्तिका' चित्र लिखा है,
उसमें तू क्या आज उठाने चली शिखा है।''

लक्ष्मण तो घर से जाते समय अपनी पत्नी को सूचित कर गये थे किन्तु यशोधरा के पति गौतम बुद्ध तो अपनी पत्नी को 'सिद्धि–मार्ग' में बाधक मानकर उसे बिना सूचित किए ही चले गये थे। यशोधरा इसमें समस्त नारी जाति का अपमान समझती है। ऐसी स्थिति में वह प्रतिज्ञा करती है कि वह अपने हृदय की समस्त आकांक्षाओं को कुचल कर अपने गौरव को बनाये रखेगी तथा उस समय तक गौतम से दूर रहेगी जब तक गौतम अपनी त्रुटि स्वयं न स्वीकार कर लेंगे।

जब गौतम सिद्धि प्राप्त कर लौटते हैं तो सारा नगर उनके स्वागत के लिए तत्पर है किन्तु यशोधरा उनके स्वागतार्थ नहीं जाती। यशोधरा के मन में अनुराग और मान के बीच संघर्ष है–

''रे मन, आज परीक्षा तेरी,
विनती करती हूँ मैं तुझसे, बात न बिगड़े मेरी।''

इस अनुराग और मान में विजय मान की होती है–

''भक्त नहीं जाते कहीं, आते हैं भगवान,
यशोधरा के अर्थ है अब यही है अभिमान।''

तथागत उस मानिनी के स्वाभिमान की रक्षा करते हुए स्वयं बुद्ध ही उससे मिलने जाते हैं और नारी की महत्ता को स्वीकार करते हैं–

''मानिनी, मान तज लो, रही तुम्हारी बान,
दानिनी, आया स्वयं द्वार पर यह भव तत्र भवान।''

वहीं दूसरी तरफ अर्द्धांगिनी को जहां अपना अधिकार नहीं मिलता और पुरूष अपने अधिकार का दुरूपयोग करने लगता है वहां भी नारी का स्वाभिमान जाग उठता है और 'विधृता' के स्वर में नारी हृदय चीत्कार

कर उठता है–

''अधिकारों के दुरूपयोग का
कौन कहां अधिकारी ?
कुछ भी स्वत्व नहीं रखती क्या
अर्द्धांगिनी तुम्हारी।''

4.3.6 नारी का विरहिणी रूप

साकेत में गुप्त जी ने उर्मिला के माध्यम से नारी को विरहिणी रूप में भी चित्रित किया है। 'साकेत' के नवम् सर्ग में उर्मिला का विरह–वर्णन कवि ने बड़े मनोयोग से किया है। उसके विरह–वर्णन में मार्मिकता, सजीवता एवं विरह–व्यथित हृदय की टीस व्याप्त है। शरद ऋतु का आगमन होने पर उर्मिला को खंजन पक्षी दिखाई देने लगते हैं, धूप खिल गई है, सरोवर जल से भरे दिखाई दे रहे हैं और हंस उनमें क्रीड़ा कर रहे हैं। विरहिणी उर्मिला को शरद के रूप में अपने प्रिय लक्ष्मण के विभिन्न अंगों के दर्शन हो रहे हैं। वह अपनी सखी से कहती है–

''निरख सखी ये खंजन आए।
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मनभाए।
फैला उनके तन का आतप, मन से सर सरसाए।
घूमे वे इस ओर जहां से हंस यहां उड़ छाए।''

विरहिणी उर्मिला को काम भावना भी सता रही है। वह कामदेव से कहती है कि मैं तो अबला हूँ और फिर वियोग व्यथा से पीड़ित हूँ। तुम्हें यह शोभा नहीं देता कि तुम मेरे ऊपर प्रहार करो–

''मुझे फूल मत मारो
मैं अबला बाला वियोगिनी
कुछ तो दया विचारो।''

उर्मिला को विरह में एक आशा थी, क्योंकि उसे पता था कि मेरे प्रिय चौदह वर्ष की अवधि बीतने के बाद अवश्य वापस आएंगे। भावोत्तेजना के क्षणों में भी उसने राजमहल की मर्यादा का सदैव ध्यान रखा। उर्मिला, चिन्ता, विषाद, काम आदि मनोभावों से ग्रस्त होकर उस विरह में स्वयं आरती की लौ की भांति जलती है और मानस मंदिर में प्रिय की प्रतिमा को स्थापित कर उनकी पूजा करती है–

''मानस मंदिर में सती प्रिय की प्रतिमा थाम
जलती सी उस विरह में बनी आरती आप।''

इस प्रकार गुप्त जी ने साकेत में उर्मिला का विरह–वर्णन बड़े मनोयोग से किया है। रामकथा प्रसंग में यह एक मधुर प्रसंग है और गुप्त जी की मौलिक उद्‌भावना है।

4.3.7 नारी के विविध रूप

गुप्त जी ने नारी के विविध रूपों का चित्रण अपने काव्य में किया है। कहीं वह कुलवधु है, तो कही गृहस्थ जीवन का भार वहन करती हुई गृहिणी है। कहीं प्रिया है, तो कहीं वीरांगना के रूप में हुंकार भरती हुई नारी है और कही पति–परायणा पत्नी होकर सती नारी के आदर्श को वहन करती है। गुप्त जी के काव्य में चित्रित नारी के विविध पारिवारिक रूपों को निम्न रूप से देखा जा सकता है–

(क) पत्नी रूप :– 'साकेत' की उर्मिला पति परायणा अनुरागिनी पत्नी है। वह इस अनुराग के कारण ही प्रिय को वन भेज देती है और उनके पथ का विघ्न नहीं बनती। वह कहती है :

''हे मन, तू प्रिय पथ का विघ्न न बन''

'यशोधरा' की 'गोपा' को अपने प्रिय से केवल यही शिकायत है कि वे उससे कहकर गृह–त्याग करते। यदि वे उससे कहकर जाते, तो उसे आत्म–सन्तोष मिलता और वह उन्हें कभी नहीं रोकती। अपनी इस व्यथा को व्यक्त करती हुई वह कहती है :–

''सखि वे मुझसे कहकर जाते।
सिद्धि हेतु स्वामी गए यह गौरव की बात।
पर चोरी–चोरी गए यही बड़ा व्याघात।''

एक अन्य स्थान पर गुप्त जी ने नारी को आदर्श पत्नी के रूप में चित्रित करते हुए कहा :–

''पति ही पत्नी की गति है।''

इस कसौटी पर उनके सभी नारी पात्र–यशोधरा, सीता, उर्मिला, विष्णुप्रिया, विधृता खरे उतरते हैं। इस प्रकार पत्नी रूप में गुप्त जी की नारियों में असीम श्रद्धा, एकनिष्ठता, कर्तव्यपरायणता, त्यागवृत्ति, संयम तथा सहयोग की भावना है।

(ख) माता रूप :– पारिवारिक जीवन में दाम्पत्य के उपरान्त मातृत्व का स्थान है। विवाहोपरान्त नारी अपने पति के साथ नूतन जीवन का आरम्भ करके सन्तोष का अनुभव तो करती है, फिर भी उसके दाम्पत्य जीवन की पूर्णता मातृत्व में ही संभव है। गुप्त जी ने कैकेयी को पुत्र स्नेह से पूर्ण दिखाया है। रामकाव्य के अधिकांश कवियों ने कैकेयी की भर्त्सना करते हुए उसके व्यक्तित्व के मातृपक्ष को भी भुला दिया है। कैकेयी को अपने पुत्र भरत पर राजा का सन्देह अच्छा नहीं लगा और उसने प्रतिरोध स्वरूप राम राज्याभिषेक में विघ्न डाल दिया :–

''भरत से सुत पर भी सन्देह।
बुलाया तक न उन्हें जो गेह।।''

चित्रकूट में हुई सभा में कैकेयी का पश्चाताप मैथिलीशरण गुप्त की मौलिक कल्पना है। इसमें वात्सल्यमयी कैकेयी के स्वच्छ हृदय की जो झांकी उपलब्ध होती है, उसने कैकेयी के पाप को पूरी तरह धो दिया। राम कहते हैं :–

''सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।
जिस जननी ने जना भरत सा भाई।।
पागल सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई।
सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।।''

कैकेयी का सब कुछ उसके पास से चला जाये किंतु वह मातृपद किसी भी मूल्य पर खोने के लिए तैयार नहीं है। इसीलिए राम के सम्मुख आंचल पसार कर कहती है–

''थूके, मुझ पर मैलोक्य भले ही थूके,
जो कोई जो सके, कहे, क्यों चूके ?
खोना न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
रे राम–दुहाई करूँ और क्या तुझसे ?''

अंत में वह लक्ष्मण के मूर्छित होने के समाचार को पाकर युद्ध में जाने का आग्रह करती है। इस प्रकार 'साकेत' में कैकेयी का स्वरूप एक परितप्त माता के रूप में दृष्टिगत होता है। उसकी क्रूरता निर्मलता में एवं द्वेषवृत्ति विनम्रता में परिणत हो जाती है।

(ग) सास का मातृत्व रूप :– मातृत्व का एक अन्य रूप सास में भी मिलता है। गुप्त जी ने नारी के इस रूप का भी सुंदर अंकन किया है। 'साकेत' में वर्णित तीनों रानियों का व्यवहार अपनी पुत्र वधुओं के प्रति स्नेह–पूर्ण है। किन्तु सास–बहु के स्निग्ध सम्बन्ध का सबसे अधिक उज्जवल रूप हमें कौशल्या में देखने को मिलता है। सीता भी अपनी सास की यथासम्भव सेवा करती थीं। देवार्चन में संलग्न कौशल्या के प्रत्येक कार्य में सीता हाथ बंटाती–

''सास चाहती थीं जब जो देती थी उनको सब सो
कभी आरती, धूप कभी, सजती थीं सामान सभी।''

सीता से अतिशय प्रेम होने के कारण ही सीता–वनवास की कल्पना मात्र ही उन्हें विकल कर देती थी। सीता के अश्रुसिक्त नेत्रों को देखकर, उनका कोमल हृदय चीत्कार कर उठता है, वह कहती हैं–

''हाथ हटा, ये वल्कल हैं, मृदुतम तेरे करतल हैं।
कोसल–वधु, विदेह–कली, मुझे छोड़ कर कहाँ चली ?
देव, हुआ तू वाम किसे ? रोको, रोको राम, इसे।''

इसके अतिरिक्त जब माताएँ पुत्र वियोग के कारण खाने–पीने से इन्कार कर देती हैं तब उनकी बहू माण्डवी ही अपनी सासों को धीरज देकर कुछ खिला पाने में समर्थ होती है। इस प्रकार 'साकेत' की सासों और बहुओं का परस्पर सम्बन्ध माता तथा पुत्री जैसा ही है।

(घ) भाभी रूप में नारी :– पारिवारिक क्षेत्र में नारी का एक अन्य रूप भी होता है और वह है भाभी का रूप। भाभी का देवर के प्रति प्रेम वात्सल्य और दाम्पत्य की मध्यवर्तिनी भावना है, क्योंकि अपने देवर के प्रति भाभी का भाव माता सदृश वात्सल्यमय भी होता है और उनके पारस्परिक व्यवहार में मित्रवत् हास–परिहास की भी छूट होती है। 'साकेत' तथा 'पंचवटी' में देवर–भाभी का सम्बन्ध हृदय से माता पुत्र के समान किन्तु बाह्य रूप से सहचरी–सहचर की भाँति अधिक चित्रित हुआ है। माता रूप में जहाँ भाभी का चित्रण हुआ है वहाँ उसे गुप्त जी ने सम्मान, आदर और पूज्य भावना से ही युक्त अधिक चित्रित किया है।

'साकेत' में देवर के प्रति भाभी के मातृसुलभ रूप की झलक अधिक मिलती है। चित्रकूट में जब सर्वप्रथम भरत सीता जी से मिलते हैं, तब सीता उन्हें माता के ही समान आशीर्वाद देती हैं–

''मैं अम्बा सम आशीष तुम्हें दूँ आओ,
निज अग्रज से भी शुभ सुयश तुम पाओ।''

इसी कारण वे आजन्म मातृतुल्य भाभी के पदसेवी बने रहना चाहते हैं–

''मैं अनुग्रहीत हूँ, अधिक कहूँ क्या देवी,
निज जन्म जन्म में रहूँ सदा पद–सेवी।''

इस प्रकार गुप्त जी के काव्य में नारी के भाभी रूप का मातृसुलभ रूप में चित्रण बड़ा ही मार्मिक ढंग से किया गया है।

4.4 सारांश

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गुप्त जी ने अपनी रचनाओं में नारी के गौरव को अक्षुण्ण रखते हुए उसके जननी, भार्या, जन–सेविका तथा प्रिया रूप के आकर्षक चित्र उतारे हैं। कवि ने नारी को प्रेम, त्याग, करूणा, सेवा–शक्ति, धैर्य–क्षमता आदि उज्जवल गुणों से मण्डित कर एक उच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया है। उनकी नारी भावना उदात्त है तथा वर्तमान नारी समाज के लिए प्रेरणादायक है।

4.5 कठिन शब्द

एकात्मकता, सर्वांगीण, न्यायोचित, परावलम्बिनी, अक्षुण्ण, यथासंभव, अनिष्ट, दुरावस्था, स्वागतार्ध, स्वावलम्बिनी, विरहिणी, भावोत्तेजना, एकनिष्ठता।

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र० 1. गुप्त जी के नारी विषयक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र० 2. अन्य साहित्यकारों की अपेक्षा गुप्त जी की नारी भावना किस प्रकार भिन्न है ?

_____

_____

_____

प्र० 3. 'साकेत' के आधार पर नारी के वात्सल्यमयी माता रूप पर प्रकाश डालें ?

_____

_____

_____

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी भावना – डॉ० मंजु लता तिवारी।
2. मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य – दानबहादुर पाठक।
3. साकेत – मैथिलीशरण गुप्त।

० ० ०

कामायनी में दार्शनिकता

5.0 रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 कामायनी में दार्शनिकता

5.3.1 आत्मा का स्वरूप

5.3.2 जीव

5.3.3 जगत

5.3.4 संसार

5.3.5 क्षणवाद

5.3.6 दुःखवाद

5.3.7 परमाणुवाद

5.3.8 विकासवाद

5.4 सारांश

5.5 कठिन शब्द

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.7 सन्दर्भग्रन्थ /पुस्तकें

5.1 उद्देश्य :– प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

1) कामायनी की दार्शनिकता को जान सकेंगे।

2) कामायनी के संदर्भ में आनंदवाद की जानकारी प्राप्त करेंगे।

3) दार्शनिकता के अन्तर्गत जीव, आत्मा, जगत, संसार आदि का अध्ययन करेंगे।

5.2 प्रस्तावना

प्रसाद जी मूलतः आनन्दवादी कवि थे। उनका आनन्दवाद शैवदर्शन के अनुरूप है। उन्होंने 'अयमात्मा परानन्द' कहकर आत्मा को आनन्द–स्वरूप कहा है। आत्मा के इसी आनन्द–स्वरूप का दिग्दर्शन कराने के लिए उन्होंने मानस मन्थन कर अपने प्रसिद्ध महाकाव्य कामायनी की रचना की। प्रसाद जी एक ओर वेदान्त–दर्शन से प्रभावित थे, तो दूसरी और शैवदर्शन से और इन्हीं दोनों का प्रभाव उनकी रचना कामायनी में दृष्टिगत होता है। उनके दार्शनिक आधार के सम्बन्ध में डा॰ स्नातक ने लिखा है, "मनु अर्थात् मनन–शक्ति के साथ श्रद्धा अर्थात् हृदय की भावात्मक सत्ता या विश्वास समन्वित रागात्मिका वृत्ति तथा इड़ा अर्थात् व्यवसायात्मिका बुद्धि के संघर्ष और समन्वय का विवेचन ही कामायनी का दार्शनिक आधार है।"

5.3 कामायनी में दार्शनिकता

कामायनी में दर्शन और मनोविज्ञान का एक साथ सुन्दर परिपाक हुआ है। दार्शनिकता पर बल देने के कारण कवि का ध्यान भौतिक घटनाओं के मूल में सन्निविष्ट उन सिद्धान्तों की ओर रहा है जिनके द्वारा जगत और जीवन की गतिविधि का यथार्थ रूप में आकलन हो सकता है। मनु और श्रद्धा की ऐतिहासिक कथा के साथ–साथ मानव–मन के विकास की मनोवैज्ञानिक कथा भी हैं। अतः इसका दार्शनिक आधार अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट और व्यक्त है। कामायनी का मूल प्रतिपाद्य, जीवन की मूल सिद्धि आनन्द है। अतः कामायनी में आनन्दवाद की प्रतिष्ठा हुई है।

कामायनी का आनन्दवाद श्रद्धामूलक आनन्दवाद है। उन्होंने बाह्य–गोचर विश्व में प्रतीयमान आनन्द से भिन्न आत्मस्थ आनन्द को स्वीकार किया है। 'रामचरित मानस' का आनन्द ब्रह्मांड में व्याप्त है जब कि कामायनी का आनन्द पिण्ड में केन्द्रीभूत है। आनन्द भूमि तक पहुँचने में साधक जब मायावी आकर्षण (सौंदर्यमयी चंचल कृतियाँ) आसुरी वृत्तियाँ एवं तर्कमयी बुद्धि, इन बाधाओं को पारकर जब जीवात्मा को कर्मशील बनाता है, हृदय का शुद्ध प्रेम अपनाता है, बुद्धि और हृदय का सन्तुलित समन्वय करता है तभी आनन्द पाता है। इच्छा, क्रिया और ज्ञान के सामंजस्य से उत्पन्न समरसता की मनः स्थिति इस आनन्द की भूमिका है, उसे सुख–दुःख कुछ नहीं व्यापता। अर्थात् यह आनन्द सामरस्य का पर्याय है। प्रसाद जी के अनुसार इस आनन्द का स्वरूप भिन्न–भिन्न मतमतांतरों के कारण ढका हुआ है। भिन्न–भिन्न साधक इसे अपनी साधना द्वारा हटाना चाहते हैं, लेकिन यह आवरण और भी अधिक रहस्यमय बनता जाता है–

सब कहते हैं खोलो खोलो
छवि देखूँगा जीवन–धन की

आवरण स्वयं बनते जाते
है भीड़ लग रही दर्शन की

इस आनन्द को प्राप्त करने के लिए प्रसाद जी ने समरसता के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। सुख–दुःख के वैषम्य का निराकरण करते हुए वह कहते हैं–

नित्य समरसता का अधिकार उमड़ता कारण जलधि समान
व्यथा से नीली लहरों बीच बिखरते सुख मणिगण द्युतिमान।

मानव–सम्बन्धों में आकांक्षा और तृप्ति का वैषम्य भी महत्त्वपूर्ण है। जहाँ भारतीय सन्यासी इच्छाओं के दमन का आदेश देते हैं, वहाँ प्रसाद जी उनके समन्वय पर बल देते हैं।

मैं तृष्णा था विकसित करता, वह तृप्ति दिखाती थी उनको
आनन्द समन्वय होता था, हम ले चलते पथ पर उनको

कामायनी में सभी प्रकार की समरसता पर बल दिया गया है–

समाज की समरसता जिसके अभाव में सारस्वत–प्रदेश की प्रजा दुःख उठाती है और जिसका संदेश श्रद्धा अपने पुत्र मानव को देती है।

व्यक्ति की समरसता जिसके लिए तर्कपूर्ण बुद्धि और भाव–संवलित हृदय का समन्वय आवश्यक है।

शासक और शासित, पुरुष और स्त्री की समरसता जिसकी अवतारणा आनन्द सर्ग में की गई है और जिसके अभाव में मनु कष्ट पाते हैं।

भूल गये तुम पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की
समरसता है सम्बन्ध बनी, अधिकार और अधिकारी की

प्रसाद जी के मतानुसार अपने–पराये का भाव और अहम् की भावना दुःख का मूल कारण हैं। जब मनुष्य इनके ऊपर उठ जाता है, उस समय वह लीलामय प्रभु के ऐसे लीलामय लोक में पहुँच जाता हैं जहाँ उसे सुख और दुःख नहीं व्यापता–

बोले देखो कि यहाँ पर कोई भी नहीं पराया।

इस स्थिति में पहुँच कर न दुःख रह जाता है और न निराशा। वह जड़ और चेतन से ऊपर उठ जाता है, ममत्व–परत्व का भेद मिट जाता है–

समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखण्ड घना था।

प्रश्न उठता है कि यह आनन्द प्राप्त कैसे हो ? इसका उत्तर प्रसाद जी ने मनु और श्रद्धा के माध्यम से दिया है। मनु श्रद्धा से रहित हो आनन्द की खोज में इधर–उधर भटकते हैं। वह बुद्धिपाश में पड़ जाते हैं जिसके फलस्वरूप संघर्ष,

कलह और अशान्ति ही मिलती है। जब तक वह श्रद्धा को प्राप्त नहीं करते, तब तक उन्हें शान्ति नहीं मिलती। उसी के द्वारा इच्छा, कर्म और ज्ञान का सामंजस्य होता है और उन्हें आनन्द प्राप्त होता है। सारांश यह कि आस्तिक बुद्धि या अभेद भावना इसकी साधक है, बुद्धि और भेद–कल्पना बाधक।

कामायनी का आनन्द अद्वैत–जन्य आनन्द है। यह आनन्द वेदान्त का अद्वैत आनन्द नहीं, शैवाद्वैत प्रतिपादित अभेदमय आत्मास्वाद है, जिसमें आत्मा परमात्मा की ही नहीं आत्मा और जगत् की पूर्ण एकता बतायी गई है। इनके अनुसार संसार पूर्णानन्दमय है, संसार में कहीं भी अशिव या निरानन्द नहीं।

सब भेदभाव भुलवा कर दुःख सुख को दृश्य बनाता, मानव कह रे !
यह मैं हूँ यह विश्व नीड़ बन जाता।

कामायनी में प्रतिष्ठित जीव, जगत्, आत्मा के स्वरूप तथा उनके लिए प्रयुक्त आधार भूत शब्दावली से भी ज्ञात होता है कि कामायनी का दर्शन कश्मीर शैव–दर्शन या प्रत्यभिज्ञा दर्शन है। इस दर्शन के अनुसार एक ही अद्वैत परमेश्वर तत्व है जो शिव है। आत्मा चैतन्य रूप है जो स्वयं निर्विकार रूप से जगत् के समस्त पदार्थों में निहित है। इसका नाम परमशिव है।

5.3.1 आत्मा का स्वरूप–कामायनी में आत्मा के लिए चिति, महाचिति, चेतनता आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है और उसे ही संसार–प्रपंच का मूल तत्त्व माना गया है, वह समस्त गोचर विश्व उसी की आनन्दमयी अभिव्यक्ति है–

कर रही लीलामय आनन्द
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त
विश्व का उन्मीलन अभिराम
उसी में सब होते अनुरक्त
'चिति' का विराट वपु मंगल,
यह सत्य, सतत, चिर सुन्दर।

शैव दर्शन की भाँति कामायनी में भी शिव और शक्ति की परिकल्पना आनन्द–सागर और उसकी तरंगावली के रूप में की गई है।

चिरमिलित प्रकृति से पुलकित, वह चेतन पुरुष पुरातन,
निज शक्ति–तरंगायित था, आनन्द–अम्बु–निधि शोभन।

5.3.2 जीव–जीव के प्रतीक मनु हैं। आरम्भ में वह चिन्ताग्रस्त हैं। जब वह जीवन में प्रवेश करते हैं, उनमें जीवन के प्रति भोग–भावना, उसकी अनित्यता, अकर्मण्यता, मिथ्याभिमान, भेद–बुद्धि आदि दोष आ जाते हैं और वह निरानन्द हो जाते हैं। ये चरित–दोष शैवदर्शन की शब्दावली में काल, कला, नियति, राग और विद्या आदि षट्कंचुकों की प्रकल्पना से प्रभावित हैं। मनु विभिन्न स्थितियों–आणव शाक्त, शांभव, तुरीय और तुरीयातीत को पार करते हैं।

उक्त विभिन्न अवस्थाओं की दृष्टि से मनु के जीवन वृत्त का अध्ययन किया जा सकता है। 'चिंता' से 'कर्म' तक वे जाग्रतावस्था में रहते हैं। 'ईर्ष्या'में श्रद्धा के परि–त्याग द्वारा विकल्प भावना का उदय होने से स्वप्नावस्था मानी जा सकती है। स्वप्न, संघर्ष तथा निर्वेद सर्गों तक सुषुप्ति की अवस्था है क्योंकि इस समय तक मनु अपने, मोह माया आदि के कारण संत्रस्त रहते हैं। 'तब चलो जहाँ पर शांति प्राप्त' पंक्ति में श्रद्धा–योग द्वारा वे तुरीयावस्था में प्रवेश करते हैं और 'रहस्य' के अंतिम छंद में वे तुरीयातीत हो जाते हैं। 'आनंद' सर्ग में उनकी इसी अनुत्तरावस्था का चित्रण है।

संज्ञाओं की दृष्टि से मनु का जीवन प्रारंभ से 'ईर्ष्या' तक 'सकल' और वहां से निर्वेद तक 'प्रलय काल' कहा जायेगा। 'दर्शन' के अंत में विज्ञानकाल तथा 'रहस्य' के अंत से उनका जीवन 'शुद्ध' संज्ञा के अंतर्गत आयेगा।

'इड़ा' सर्ग में संकुचित असीम अमोघ शक्ति नामक पद में माया के विभिन्न रूपों अर्थात् कंचुकों का पारिभाषिक रूप में ही उल्लेख किया गया है। वस्तुतः ये कंचुक शिव की मूल शक्तियों को सीमित करने वाले तत्त्व ही हैं। यहाँ शिव–शक्तियों का शुद्ध रूप और कंचुकों को अशुद्ध रूप के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। डॉ॰ नगेन्द्र ने इन कंचुकों को इस तरह वर्णित किया है–

	शुद्ध रूप	लक्षण	कंचुक	अशुद्ध रूप
(1)	शिव	चित (नित्यता)	काल	अनित्यता (समय)
(2)	शक्ति	आनंद (स्वातंत्र्य या व्यापकता)	नियति	परतंत्रता, सीमा
(3)	सदाशिव	इच्छा (महत् शक्ति)	राग	अपूर्ण अहंता
(4)	ईश्वर	ज्ञान (सर्वज्ञ)	विद्या	ज्ञान का शुद्ध अंश (सीमित ज्ञान)
(5)	सद्विद्या	क्रिया (सर्वकर्त्तत्व)	कला	किंचित्कर्तृत्व (नश्वर)

जहाँ पर पाँच ही कंचुकों का उल्लेख है। वस्तुतः माया से उद्भूत ये उसके आवरण हैं। मनु का पूर्व जीवन इन्हीं से आबद्ध रहा है और अंत में इन्हीं से मुक्त हो कर वे आनंदमय होते हैं। कोशों की दृष्टि से मलों और कंचुकों से आवृत्त मनु प्राण तथा मन के कोशों में लिप्त हैं। नर्तित नटेश के दर्शन के साथ वे 'विज्ञान कोश' में प्रवेश करते हैं और त्रिपुरों की समरसता के साथ 'आनंद' में। इस तरह मनु का जीवनवृत्त प्रत्याभिज्ञा दर्शन में वर्णित जीव की विशेषताओं से युक्त है।

5.3.3 जगत्

कामायनी के पूर्वार्द्ध में जगत् की असत्यता, दुःखमयता आदि के विषय में मनु के अनेक उद्गार प्राप्त होते हैं। जैसा कि हमने अभी स्पष्ट किया, वे मन की आवृत अवस्था के द्योतक हैं, अतः वे सिद्धान्त–पक्ष के अन्तर्गत नहीं आते। विषादग्रस्त मनु का यह विचार था कि जीवन जड़ता की राशि है – निराशा ही इसका परिणाम है, दीन जीवन का संगीत निरन्तर तिमिर के गर्भ में बढ़ता जा रहा है। किन्तु श्रद्धा इसका निराकरण करती हुई आत्म–विश्वास के साथ उत्तर देती है :

कर रही लीलामय आनन्द
महाचिति सजग हुई–सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी में सब होते अनुरक्त।
काम मंगल से मंडित श्रेय,
सर्ग इच्छा का है परिणाम।

कामायनी के वस्तु–विधान से यह स्पष्ट है कि मनु का पक्ष पूर्व–पक्ष है और श्रद्धा का पक्ष आरम्भ से ही उत्तर–पक्ष या सिद्धान्त–पक्ष रहा है – मनु प्रश्न हैं और श्रद्धा उत्तर :

एक था यदि प्रश्न, तो उत्तर द्वितीय उदार।

अतः श्रद्धा के शब्दों में कामायनी के जगत्–सम्बन्धी विचारों की प्रथम प्रामाणिक अभिव्यक्ति है अर्थात् यह संसार महाचिति की लीलामयी अभिव्यक्ति है – अतएव श्रेयस्कर और आनन्दमय है, इसके प्रति अनुराग स्वाभाविक है। आणव स्थिति में होने के कारण मनु इस मंगल रहस्य को नहीं समझ पाते और वे जीवन एवं जगत् को निस्सार मानते हुए निरन्तर भटकते रहते हैं। परन्तु अन्त में श्रद्धा के संसर्ग से स्वस्थ स्थिरचित हो जाने पर – पारिभाषिक शब्दावली में शांभव स्थिति में पहुँच जाने पर, वे भी इस सत्य को प्राप्त कर लेते हैं :–

अपने दुख–सुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर,
'चिति' का विराट् वपु मंगल,
यह सत्य, सतत चिर–सुन्दर।

यही स्पष्टतः शैवाद्वैत में प्रतिपादित विश्व का स्वरूप है जहाँ उसे शिव का शरीर मानते हुए आनन्दमय घोषित किया गया है :

त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा।

शैव दर्शन के अनुसार यह विश्व शिव या चिति से अभिन्न है – वही अपनी इच्छा से अभिन्न रूप में इसका उन्मेष करती है :

चेतनो हि स्वात्मदर्पणे भावान् प्रतिबिम्बबद् आभासयति इति सिद्धान्तः । (अभिनवगुप्त)

5.3.4 संसार – संसार विषयक यह मान्यता शुद्ध शैव–सिद्धान्त पर आश्रित है और वेदान्त के अद्वैत से भिन्न है। इसे शैवागमों में आभासवाद, अभेदवाद आदि के नाम से अभिहित किया गया है। इसके अनुसार जगत् का ईश्वर के साथ अभेद सम्बन्ध है, कार्य–कारण सम्बन्ध नहीं है। इस विश्व प्रपंच के विकास के प्रसंग में शिव से लेकर धरणि–पर्यन्त छत्तीस तत्त्वों की कल्पना की गयी है। इनमें प्रथम पाँच तो परमेश्वर की शक्ति के विकसित रूप हैं,

आगे माया से लेकर नियतिक षट् कचुंक हैं, और अन्त में पुरुष से लेकर पंचभूत तक पच्चीस तत्त्व ही हैं। कामायनी में इन तत्त्वों का अनुसंधान करना कठिन नहीं है – रहस्य–सर्ग में मनु क्रमशः 'नियति' 'काल' आदि से मुक्त होकर शुद्ध रूप की ओर बढ़ते हैं और आनन्द सर्ग में प्रथम पाँच तत्त्वों की ओर भी संकेत मिल जाते हैं इसी प्रकार भाव लोक के वर्णन में पंच ज्ञानेन्द्रियों की और कर्म लोक के वर्णन में पंच कर्मेन्द्रियों का उल्लेख है और आशा सर्ग में सृष्टि के विकास क्रम में पंचभूत का।

शैवदर्शन के अतिरिक्त कामायनी में अन्य दर्शनों के संकेत भी दृष्टिगत होते हैं। उन पर बुद्ध के शून्यवाद, क्षणिकवाद और दुःखवाद के अतिरक्ति नियतिवाद का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है।

मौन, नाश विध्वंस अंधेरा
प्रकट बना जो शून्य अभाव

यदि शून्यवाद का आभास मिलता है, तो–

जीवन तेरा क्षुद्र अंश है
व्यक्त नील घनमाला में
सौदामिनी सन्धि सा सुन्दर,
क्षण भर रहा उजाला में।

5.3.5 क्षणवाद :

इसकी भी व्यंजना मनु के उद्‌गारों द्वारा विशेषकर चिंता भोग–विलासोन्मुख क्षणों में हुई है व्यक्त नील घनमाला में,

जीवन तेरा क्षुद्र अंश है, व्यक्त नील घनमाला में,
सौदामिनी–संधि–सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में।

'कर्म' सर्ग में वे श्रद्धा, से कहते हैं कि श्रद्धे अपने सुख भी तुच्छ नहीं हैं, दिन के जीवन में तो वही सब कुछ है। उनका यह वक्तव्य भी बौद्ध–दर्शन के क्षण वाद की विशेषताओं से युक्त है किन्तु 'कामायनी' में दुःखवाद की तरह इसका प्रयोग अंशतः है। जो कुछ है, वह जीव की विषमता के प्रति प्रदर्शनार्थ किया गया है। कामायनी में करुणा की अन्तर्धारा आद्यन्त विद्यमान है।

'कर्म' सर्ग में श्रद्धा, अहिंसा, करुणा का ही संदेश देती है। श्रद्धा की यह करुणशीलता उसके चरित्र विकास में सहायक सिद्ध हुई है।

5.3.6 दुःखवाद :

बौद्ध दर्शन का यह एक प्रमुख अंग है जिस के अनुसार संसार के प्रत्येक कार्य–व्यापार में दुःख निहित है।

"व्योम की नीली लहरों बीच बिखरते सुख मणिगण द्युतिमान"
"उमड़ रहा है देव सुखों पर दुःख जलधि का नाद अपार"

आदि वक्तव्यों में दुःखवाद का ही प्रभाव परिलक्षित है। मनु के आत्म–चिन्ता विषयक पदों में भी दुःखवाद की गहरी छाप दिखाई देती है–

मौन ! नाश ! विध्वंस ! अन्धेरा !
शून्य बना जो प्रगट अभाव।

कामायनी में यह दुःखवाद मनु या जीव द्वारा व्यक्त किया गया है और यह आनन्दवाद की प्राप्ति में परोक्ष रूप से साधक ही सिद्ध हुआ है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार विषमताओं को शिव–शक्ति की नोंक–झोंक कहा जाता हैं।

5.3.7 परमाणुवाद :

प्रसाद के ऊपर परमाणुवाद का भी अच्छा प्रभाव था। उनके मतानुरूप सृष्टि का विकास परमाणुओं के सहयोग एवं संगठन से हुआ है। न्याय–वैशेषिक के अनुसार परमाणुओं के संयोग से स्थूलता एवं स्थूलतम पदार्थों का आविर्भाव होता गया जिससे, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि का आविर्भाव सम्भव हुआ। कामायनी में प्रसाद ने इस विचारधारा का बड़ी चतुरतापूर्वक विश्लेषण किया है। इनके अनुसार प्रारम्भ में रूपाकारहीन विराट् कुहामण्डल था, पुनः क्रमशः विद्युत् कण, परमाणुओं के संश्लेषण द्वारा प्रकृति के अनेक रूपों का आविर्भाव हुआ। प्रसाद ने समस्त ध्वंसित और विश्लेषित पदार्थों के एकीकरण का मूल आधार मूल शक्ति को ही माना है जिसके आलस्य त्याग मात्र से अणु–परमाणु एक दूसरे से संयोग करने के लिए व्यग्र हो जाते हैं–

वह मूल शक्ति उठ खड़ी हुई,
अपने आलस का त्याग किये,
परमाणु बाल सब दौड़ पड़े,
जिसका सुन्दर अनुराग लिए।
कुंकुम का चूर्ण उड़ाते–से,
मिलने को गले ललकते से,
अंतरिक्ष के मधु–उत्सव के,
विद्युत कण मिले झलाते से।

5.3.8 विकासवाद :

डार्विन के विकासवाद का प्रसाद जी की कामायनी पर गहरा प्रभाव पड़ा है। विकासवाद के तीन सिद्धान्त हैं–प्रथम परिवर्तन, द्वितीय अनुकूल वर्णन से जीवन के सामर्थ्य तथा गुणों का विकास एवं विपरीत से उनके पास, तीसरा शक्ति स्पर्धावाद। कामायनी में इन तीनों का स्वरूप व्यक्त हुआ है। संघर्ष सर्ग में प्रसाद जी विश्व को बंधनहीन परिवर्तन कहते हैं। अनुकूल परिवर्तन का उदाहरण इड़ा का निम्नांकित कथन है–

ताल–ताल पर चलो नहीं लय छूटे जिसमें
तुम न विवादी स्वर छेड़ो, अनजाने इसमें।

"स्पर्धा में जो उत्तर ठहरें, वे रह जायें," या "है परम्परा लग रही यहाँ ठहरा जितना बल है" आदि पंक्तियों में विकासवाद का शक्ति स्पर्धावाद स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। पंत जी के शब्दो में तो यह कृति "केवल आधुनिक युग के संवाद से काल्पनिक एवं मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रेरणा ग्रहण कर तथा अध्यात्म दृष्टि से वही चिर प्राचीन व्यक्तिवादी विकसित एवं समरस नित्य आनंद चैतन्य आरोहण मूलक आदर्श उपस्थित कर भारतीय पुनर्जागरण के काव्य–युग के अंतिम परिच्छेद की तरह समाप्त हो जाती है।" किन्तु यह आरोपण उचित नहीं, कामायनी में दुःखवाद, क्षणवाद आदि व्यतिरेक द्वारा आनंद–सिद्धि में सहायक हुए हैं।

5.4 सारांश :

कहा जा सकता है कि प्रसाद जी की निजी आस्था शैवदर्शन में अविचल है। दूसरे सिद्धान्तों को तो उन्होंने केवल व्यतिरेक के रूप में अपने मत को पुष्ट करने के लिए ग्रहण किया है। अतः बुद्धिवाद और उसके पोषक विकासवाद को कामायनी के पूर्व–पक्ष के अन्तर्गत ही मानना चाहिए जो व्यतिरेक की पद्धति से शैवाद्वैत पर आधारित आनन्दवाद की प्रतिष्ठा करता है। शुक्ल जी का मत है कि–

"कामायनी में प्रसाद जी ने अपने प्रिय आनन्दवाद की प्रतिष्ठा दार्शनिकता के ऊपरी आभास के साथ कल्पना की मधुमती भूमिका के आधार पर की है।"

कामायनी के दार्शनिक विचारों में व्यावहारिकता की प्रधानता उसके महत्त्व को और भी बढ़ा देती है। उसका 'आनन्दवाद' लोक–भोग के द्वारा ही लोक–मुक्ति उपलब्ध करने का संदेश देता है। वह प्रकृति के त्याग का नहीं, उसके सम्यक् ग्रहण की बात कहता है। उसे भोगवादी और निवृत्तिमूलक विवेकवादी दोनों ही मार्ग आग्रह्य हैं। वह कर्म की महत्ता का प्रतिपादन करता है, दूसरों के आनन्द में आनन्द लेना ही इस कर्म–मार्ग की अपूर्वता है। यह आनन्दवाद निराश एवं अवसाद की भर्त्सना कर ओज़स्विता, आशा और उल्लास का वरण करता है। इसके लिए नियति निरा भाग्य नहीं, विश्व की मांगलिक नियामिका शक्ति है। कामायनी का आनन्दवाद न तो भोगवाद है और न वैराग्य, वह राग–विराग समन्वित काम–प्रेरित कर्म का सन्देश देता है। उसका आनन्दवाद कर्मठ लोगों का आनन्दवाद है जो गीता के निष्काम कर्मयोग से भी बहुत कुछ मिलता–जुलता है। उसका महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि कवि ने दर्शन के नीरस विचारों को भाव और कल्पना का योग देकर उन्हें सरस एवं सुलभ बनाया है।

5.5 कठिन शब्द

1. रागत्मिका
2. प्रतीयमान
3. सामरस्य
4. प्रत्यभिज्ञा
5. कंचुको
6. आणव
7. परिलक्षित
8. संश्लेषण
9. ध्वंसित
10. व्यतिरेक
11. निवृत्तिमूलक
12. नियामिका

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1 कामायनी में व्यक्त दार्शनिकता के स्वरूप पर प्रकाश डालें ?

_____

_____

_____

_____

प्र2 कामायनी के संदर्भ में आनंदवाद को स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

_____

5.7 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

1) कामायनी : एक अध्ययन :–डॉ. नगेन्द्र।

2) कामायनी अनुशीलन – रामलाल सिंह।

3) कामायनी, एक पुनर्विचार – मुक्तिबोध।

4) प्रसाद का काव्य – प्रेमशंकर।

5) कामायनी मूल्यांकन और मूल्यांकन– इन्द्रनाथ मदान।

.....

कामायनी का महाकाव्यत्व

6.0 रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.3 महाकाव्यत्व के लक्षण

6.4 कामायनी का महाकाव्यत्व

- 6.4.1 उदात्त विचार
- 6.4.2 उदात्त कथानक
- 6.4.3 उदात्त चरित्र
- 6.4.4 उदात्त भाव या अंगी रस
- 6.4.5 युग–जीवन तथा प्रकृति के विविध पक्षों का चित्रण
- 6.4.6 उदात्त भाषा शैली
- 6.4.7 छंद और सर्गबद्धता
- 6.4.8 नामकरण

6.5 सारांश

6.6 कठिन शब्द

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.8 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

6.1 उदेश्य :– प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

1) महाकाव्यत्व के लक्षणों को जान सकेंगे।

2) कामायनी के महाकाव्यत्व की जानकारी प्राप्त करेंगे।

6.2 प्रस्तावना

कामायनी के काव्यत्व पर विचार करने से पूर्व काव्य तत्व के विषय तत्व पर विचार–विमर्श करना आवश्यक हो जाता है। भारतीय भाषाओं का काव्य संस्कृत साहित्य से विशेष प्रभावित है। भामह संस्कृत–साहित्य के पहले आचार्य हैं जिन्होंने 'काव्यालंकार' में महाकाव्य के वस्तुशिल्प पर विशद व्याख्या प्रस्तुत की। परवर्ती आचार्यों में दण्डी, रूद्रट, हेमचन्द्र सूरि, विश्वनाथ आदि ने उनके ही विचारों को आधार बनाकर महाकाव्य के तत्वों की व्याख्या, प्रस्तुत की है और कुछ नये तत्वों को जोड़कर उसे युगानुरूपता प्रदान कर दी है।

6.3 महाकाव्यत्व के लक्षण

पन्द्रहवीं शताब्दी के महान् काव्याचार्य पं॰ विश्वानाथ ने अपने समस्त पूर्ववर्ती आचार्यों के विचारों का समन्वय कर लिया है। उनके अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु को इतिहास–प्रसिद्ध या सज्जन–चरित्र से सम्बद्ध, सर्गबद्ध तथा नाटकीय संधियों से युक्त होना चाहिए। प्रारंभ में मंगलाचरण, ईश्वर–वंदना, आशीर्वचन या कथावस्तु के निर्देश के बाद सज्जनों की प्रशंसा तथा दुर्जनों की निंदा भी उसमें रहनी चाहिए।

नायक शूरवीर या सद्वंशीय क्षत्रिय हो, उसमें समस्त धीरोदात्त गुण अर्थात्–गंभीरता, क्षमाशीलता, आत्मश्लांघहीनता, स्थिरता तथा स्वाभिमान होना चाहिए। एक वंश के कई राजाओं में भी ये गुण हो सकते हैं और वे भी नायक बन सकते हैं।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से एक या अधिक फलों की प्राप्ति महाकाव्य का लक्ष्य हो तथा श्रृंगार, वीर और शान्त रसों में से कोई एक रस प्रमुख हो शेष गौण हों।

न अति छोटे न अति बड़े कम से कम आठ सर्गों का विधान होना चाहिए। सर्ग के अंत में छंद बदल जाये पर कथा प्रवाह के लिए छंद की एकरूपता आवश्यक है। किसी–किसी सर्ग में अनेक छंद भी हो सकते हैं। सर्ग के अन्त में आने वाली कथा की सूचना पूर्वाभास–रूप में प्रस्तुत होनी चाहिए।

महाकाव्य में यथास्थान तथा सम्यक् अवसर पर प्रकृति के विभिन्न परिदृश्य तथा जीवन के विविध पक्षों का सांगोपांग चित्रण भी होना चाहिए।

ग्रंथ का नाम कवि, कथानक, नायक या अन्य पात्र के आधार पर ही होना चाहिए।

ये लक्षण पन्द्रहवीं शताब्दी तक के महाकाव्यों की परीक्षा के लिए तो सम्यक् हैं पर तब से आज तक काव्य कई सरणियाँ पार कर चुका है। अतएव आधुनिक युगीन स्वछंदतावादी महाकाव्यों का अध्ययन–परीक्षण उपर्युक्त लक्षणों पर नहीं किया जा सकता। नये काव्य–युग के जनक प्रसाद जी ने महाकाव्य के क्षेत्र में परम्परागत समस्त

रूढ़ियों का परित्याग कर उसका एक–निखरा हुआ भावात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया है। उन्हीं की दृष्टि से पूर्व–छायावाद हिन्दी के समस्त महाकाव्य बुद्धिवादी हैं। उनमें घटना, वर्णन या चरित्र–तत्व की प्रमुखता है पर छायावाद व्यापक–रूप से भावोन्मेष का युग है अतएव महाकाव्य की वस्तु तथा कलागत शिल्प में परिवर्तन उपस्थित होना अतीव सहज, स्वाभाविक एवं युगानुरूप है। जो परिवर्तन आया है वह शिल्पगत ही है, महाकाव्य की आंतरिक गरिमा, महत्ता और उदात्तता में किसी प्रकार की कमी नहीं आई है। यही कारण है कि आधुनिक युग में जितने भी महाकाव्यों से संबधित शोध प्रबंध लिखे गये हैं, उनमें महाकाव्य के वस्तुगत तत्वों की विशदता, व्यापकता तथा उदात्तता पर विशेष बल दिया गया है। डॉ॰ शंभूनाथ सिहं द्वारा निर्देशित महाकाव्य के लक्षणों को समान रूप से सभी के द्वारा न्यूनाधिक रूप में स्वीकार किया गया है वे हैं–

1. महत्उद्देश्य, महत्प्रेरणा और महती काव्य प्रतिभा।
2. गुरूत्व, गांभीर्य और महत्त्व।
3. महत् कार्य और युग–जीवन का समग्र चित्र।
4. सुसंगठित और जीवंत कथानक।
5. महत्त्वपूर्ण नायक।
6. गरिमामयी उदात्त शैली।
7. तीव्र प्रभावान्विति और गंभीर रस–योजना।

डॉ॰ नगेन्द्र ने कामायनी का महाकाव्यत्व जिन मूल तत्त्वों पर विश्लेषित किया है, वे इस प्रकर हैं : (1) उदात्त कथानक, (2) उदात्तकार्य और उद्देश्य, (3) उदात्त चरित्र, (4) उदात्त भाव और (5) उदात्तशैली। कहना नहीं होगा कि डॉ॰ सिंह तथा नगेन्द्र के इन निष्कर्षों में मात्र शाब्दिक अंतर है। 'महत्' को सरलता के साथ 'उदात्त' का पर्यायवाची माना जा सकता है। लोन्जाइनस ने काव्य में उदात्त तत्वों का ही विधान माना है। उनके अनुसार (1) उदात्त काव्य में महान् धारणाओं की क्षमता (2) उदात्त तथा भव्यावेग की तीव्रता (3) समुचित अलंकार–योजना (4) गरिमामय भाषा और (5) उदात्त तथा अर्जित रचना–विधान का होना अतीव आवश्यक है। इस तरह आधुनिक महाकाव्य के जो लक्षण निर्दिष्ट किये गए हैं वे उदात्त काव्य के ही लक्षण हैं। महाकाव्य को आवश्यक रूप से उदात्तकाव्य तो होना ही चाहिए किन्तु वह उदात्त काव्य का पूर्णतः पर्यायवाची नहीं है। खंड काव्य, वृहत्तर प्रगीतात्मक रचनायें या आख्यानक प्रगीतियाँ भी उदात्त काव्य का अंग होती हैं, प्रसाद जी की 'आँसू' एक ऐसी ही रचना है। इस स्थिति में महाकाव्य और उदात्तकाव्य में भेद करना आवश्यक है, क्योंकि औदात्य तो काव्यमात्र का लक्षण है।

पश्चिमी विद्वानों में डब्लू॰ पी॰ केर, डिक्सन, बावरा आदि ने भी महाकाव्य के विषय में जो विचार प्रकट किये हैं, उनमें अंतरंग वस्तु की उदात्तता, जीवन–व्यापी विशदता आदि पर विशेष महत्त्व दिया गया है और शिल्पपक्षीय तत्त्वों की अवहेलना की गई है। इसका कारण कदाचित् यह है बाह्य शिल्प कवि की प्रतिभा तथा कला–कुशलता पर अवलंबित है जबकि अंतरंग पक्ष समस्त मानवीय जीवन की गरिमा से। प्रथम पक्ष कवि तथा युग–सापेक्ष है और दूसरा निरपेक्ष।

बाह्य तत्त्व साधन है, अंतरंग साध्य, महाकाव्य के लिए उदात्तता दोनो ही स्तरों पर आवश्यक है किन्तु वह युग–युग का प्रकाशन–काव्य आंतरिक गरिमा तथा उदात्तता के कारण ही बनता है, कलात्मक उपकरण तत्त्वों को ही अधिक सबल, संप्रभावक तथा रमणीय बनाने में अपना योग प्रदान करते हैं।

6.4 कामायनी का महाकाव्यत्व

आचार्य विश्वनाथ ने जिन लक्षणों का निर्देश किया है, वे अधिक रूपात्मक हैं और लोन्जाइनस के तत्त्व उदात्त काव्य के परिपोषक। इन दोनों के संश्लेषण से एक ऐसी सार्वभौमिक कसौटी बनाई जा सकती है जिसके आधार पर आधुनिक–युगीन महाकाव्यों का सरलतापूर्वक परीक्षण किया जा सकता है। 'कामायनी' के महाकाव्यत्व पर विचार करने के लिए हम इन दोनों के सम्मिलित निष्कर्ष के साथ–साथ आधुनिक युग के काव्य की मूल प्रवृत्तियों को भी आधार बनाकर चल रहे हैं।

6.4.1. उदात्त विचार : औदात्य महान् आत्मा की प्रतिध्वनि होती है। महान् आत्मा से आशय उदात्त, गम्भीर और महत् विचारों या मन की ऊर्जा–शक्ति की उपस्थिति से है। 'कामायनी' में श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास प्रस्तुत किया गया है जो अपने आप में बड़ा ही भावमय तथा श्लाघ्य कार्य है। यह वस्तु मनुष्यता के मनोवैज्ञानिक इतिहास रूप में भी प्रस्तुत हुई है। दार्शनिक दृष्टि से प्रत्यभिज्ञा दर्शन का आनंदवाद इसका प्रमुख साध्य है जो समरसता द्वारा सहज लब्ध है। यह दर्शन केवल सैद्धांतिक रूप में प्रस्तुत न होकर मानवीय जीवन के व्यावहारिक धरातल पर प्रस्तुत हुआ है। इस रूप में यह अधिक प्रेरणा–प्रदायक तथा नवजीवन मूल्यों की स्थापना में सहायक सिद्ध हुआ है। यह पक्ष 'कामायनी' की चिरंतनता को उद्घाटित करता है। विषमताओं से मुक्ति और आनंद का अन्वेषण हर युग के जीवन की प्रमुख समस्या रही है, दार्शनिकों ने इसके लिए कर्मकाण्डी, यौगिक, तप, वैराग्यमूलक सैद्धान्तिक समाधान प्रस्तुत किए थे किन्तु 'कामायनी' में यह वस्तु श्रद्धा का अनुकरण करने पर इसी संसार में सहज ही प्राप्त हो जाती है। प्रसाद जी की यह निस्संदेह एक महानतम उपलब्धि है जो इस ग्रंथ को उदात्त काव्य बनाने में सहायक सिद्ध हुई है।

'कामायनी में युगीन समस्याओं का संश्लिष्ट चित्रण है। आधुनिक जीवन की यांत्रिकता, बुद्धिवाद, भौतिकवादी विचारधारायें आदि मनुष्य के व्यक्तित्व को खण्ड–खण्ड करके वर्ग–भेदों में बाँट रही है, मनसा, वाचा और कर्मणा में वैषम्य विडम्बनाओं की सर्जना कर रहा है, और नया मनुष्य अतृप्ति, अहंमन्यता, कुंठा, स्वार्थपरता काम–सुखादि में व्यस्त हो अपना ही दुश्मन बनता जा रहा है, जिसका प्रतिफल हमें हर दिन कहीं–न–कहीं सत्ता–संघर्षों के रूप में देखने को मिल रहा है, प्रत्येक दिन एक–न एक प्रजापति मनु अपने ही द्वारा बनाये गये नियमों का उल्लंघन कर जनता के साथ अतिचार कर रहा है। आधुनिक जीवन के ये गंभीरतम प्रश्न हैं जिनका समय पर समाधान न करने से भी विश्व में विस्फोट हो सकता है। प्रसाद जी ने 'कामायनी' में इनका स्वरूप स्पष्ट किया है और काम की अभिशाप वाणी द्वारा भविष्य निर्दिष्ट कर इन समस्याओं का व्यावहारिक समाधान भी प्रस्तुत कर दिया है। वैचारिक दृष्टि से यह कार्य भी उदात्त है। आज के प्रश्न केवल भारत तक सीमित न होकर समग्र विश्व तक व्याप्त हैं। इस तरह 'कामायनी' अपनी वैचारिक सम्पदा में विश्वव्यापी समस्याओं का चित्रण तथा समरसता के माध्यम से उनका समाधान लेकर चली है। इस निष्कर्ष पर उसे विश्व काव्य की कोटि में सरलतापूर्वक रखा जा सकता है। मनु अर्थात् आधुनिक युग के सामान्य मानव का असत् से सत् की

ओर, अज्ञान से प्रकाश की ओर तथा दुःखमय जीवन से अमृत की ओर विकास प्रस्तुत करना इस ग्रंथ का परम लक्ष्य है। काम और अर्थ की युगीन परिधि से मनुष्य किस प्रकार धर्म मोक्ष के परिक्षेत्र में जीते जी पहुँच सकता हैं, 'कामायनी' इसका ही संदेश देने के लिए लिखी गई है।

सांस्कृतिक दृष्टि से इसमें तीन संस्कृतियों का व्यापक चित्रण किया गया है, देव, वन्य और भौतिक, ये क्रमशः काम, धर्म और अर्थ की प्रतीक हैं किन्तु परस्पर असंबंधित होने के कारण ये तीनों ही अपूर्ण, अतृप्ति एवं असंतोष की जनक हैं। मनु इन तीनों की परिधियों से निकल कर एक चतुर्थ मानवीय एवं सर्वश्रेष्ठ समरस संस्कृति का निर्माण करते हैं, जहाँ मूर्तमान रूप में मोक्षावस्था विद्यमान है यही मानवता का चरम विकास है जो हम में से प्रत्येक का लक्ष्य है। इस दृष्टि से भी कामायनी की वैचारिक उदात्तता प्रशंसनीय वस्तु है। इस वैचारिक धरातल पर 'कामायनी' युग–काव्य होते हुए भी युग–युग का काव्य बन जाती है।

डॉ॰ नगेन्द्र ने 'कामायनी' के कार्य को धर्म, राजनीति तथा विज्ञान अर्थात् भाव, क्रिया और ज्ञान की भूमिका पर भी प्रस्तुत किया है, जो बड़ा ही समीचीन है। इन तीनों में परस्पर ऐक्य न होने के कारण ही आज के जीवन में विषमता विद्यमान है मानवता के प्रति अटूट श्रद्धा रखते हुए तीनों प्रवृत्तियों में एकात्मकता स्थापित करना आज की परमावश्यकता है। धर्म–संस्कृति, राजनीति तथा विज्ञान के समन्वित होते ही आज की सारी समस्याऐं समाप्त हो जायेंगी। इस तरह 'कामायनी' में सामयिक, सार्वकालिक तथा सर्वदेशीय समस्याओं का चिरंतन तथा व्यावहारिक समाधान जिस भव्य और अर्जित रूप में विद्यमान है, वैसा अन्यकाव्य ग्रंथों में देखने को नहीं मिलता है। उसका यह नव आयाम निश्चित रूप से उदात्त तथा महाकाव्यात्मक गरिमा से अभिमंडित है। इन उदात्त विचारों में हम प्रसाद जी की महत्प्रेरणा, महती काव्य प्रतिभा, महदुदेश्य, गुरुत्व, गांभीर्य महत् कार्य एवं युग–जीवन का संश्लिष्ट चित्र भी देख सकते हैं।

6.4.2 उदात्त कथानक : महान् धारणाओं या उदात्त विचारों की क्षमता के लिए कथानक की उदात्तता भी आवश्यक होती है। लोन्जाइनस के शब्दों में विषय में ज्वालामुखी के समान असाधारण शक्ति तथा वेग और ईश्वर के समान वैभव एवं ऐश्वर्य होना चाहिए। विषय–चयन ऐसा होना चाहिए कि जिससे प्रभावित न होना कठिन ही नहीं लगभग असम्भव हो जाये और जिसकी स्मृति इतनी प्रबल और विषय का विस्तार अनंत या जीवन–व्यापी हो। भारतीय विद्वानों ने इसे सुसंगठित और जीवंत भी होना आवश्यक निरूपित किया है।

'कामायनी' की कथावस्तु ऐतिहासिक पौराणिक है। यह देव–वर्गीय है। साथ–साथ आदि पुरुष तथा आदि नारी मनु–श्रद्धा के जीवन से सम्बन्धित हैं। 'कामायनी' की समग्र कथा अखिल मानव भावों के सत्य–मानव चेतना के इतिहास को भी प्रस्तुत करती है। मनु किस प्रकार चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्यादि से होते हुए अखण्ड आनंद की प्राप्ति करते हैं, यही इसकी कथा का सार अंश है। यह अंश इतना सार्वदेशिक और जन–जीवन–व्यापी है कि उसके अक्षय एवं उत्कट प्रभाव से बचे रहना पाठकों के लिए असम्भव हो जाता है। मनु का पूर्व–पक्ष पूर्णतः सामान्य मानव का पक्ष है जिस में चिंताये, उद्वेग, राग–विराग, ईर्ष्या, हिंसा, कर्म–वासना, असंतोष, द्वन्द्व, संघर्षादि सब कुछ अत्यंत प्रवेगशाली रूप में वर्तमान हैं। पुनः तीन तीन संस्कृतियों का समावेश हो जाने के कारण मनु के उपर्युक्त जीवन व्यापार और अधिक व्यापक तथा प्रशस्त–स्तर पर हमारे सामने उद्घटित होते हैं। व्यतिरेक के माध्यम से ये तीनों ही पक्ष मनु की आनंद प्राप्ति में सहयोगी सिद्ध होते हैं। इस प्रकार 'कामायनी' की कथा असाधारण

शक्ति, वेग और जीवन के महत् पक्षों से संबंधित है किन्तु उसका संविधान भावात्मक स्तर पर किया गया है जो इस कृति के सर्वथा अनुरूप है। यही कारण है कि इसका कथानक जीवंत तो है पर सुगठित नहीं, सुसंगठन के लिए उसे वर्णनात्मक या घटना प्रधान होना आवश्यक था, इसी स्थिति में उसमें नाटकीय संधियों, कार्यावस्थाओं और अर्थ प्रकृतियों के विधान द्वारा क्रमशः उत्कर्ष प्रदर्शित करना सरल होता है, पर 'कामायनी' में जब कथा ही भिन्न स्तर पर प्रस्तुत है तो वहाँ इनकी सुगठता का प्रश्न ही नहीं उठता, हाँ सर्व विधान में क्रमशः भावात्मक उत्कर्ष का स्वरूप निश्चित ही देखा जा सकता है, जो 'कामायनी' के कथानक की एक नवीन उपलिब्ध है। इस प्रकार कामायनी का कथानक मनोवैज्ञानिक भाव–विकास के स्तर पर अत्यंत सुगठित है।

इसका कथानक बाह्य घटनाओं से कम और मानव के आधिमानसिक जीवन से अत्यधिक सम्बन्धित है। बाह्य–संघर्ष, इसी का विवर्त है। आज मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के मन के भीतर चलने वाले संघर्ष ही संसार में विनाश या निर्माणकारी कार्यों के रूप में अवतरित होते हैं। इस दृष्टि से भी 'कामायनी' में मानव–चेतना का घटना–चक्र कथानक का जीवंत रूप प्रस्तुत करता है। महाकवि की सारस्वत प्रज्ञा ने आधुनिक जीवन के मूल रहस्यों और वैज्ञानिक प्रगति से उत्पन्न गंभीर समस्याओं की प्रकृति को समझा तथा उन्हें इस महाकाव्य के कथानक–रूप में गुँथ दिया है। अपने इस रूप में 'कामायनी' की कथावस्तु निश्चित ही महत्त्वपूर्ण, नवीन और उदात्तता के तत्त्वों से युक्त है, उसमें भावात्मक विकास के स्तर पर सर्गों का नामकरण तथा उनका सुगठित संविधान भी विद्यमान है। इसकी कथा किसी एक महापुरुष की जीवन–गाथा या किसी राजवंश के इतिवृत से संबंधित नहीं है, वह एकदेशीय और किसी युग विशेष से भी अनुबंधित नहीं, बल्कि वह तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आदि से अंत तक–सम्पूर्ण मानवता के विकास की कथा है। इस तरह 'कामायनी' का कथा–फलक व्यापक है उसमें अन्य महाकाव्यों के समान सभ्यता और संस्कृति के खण्ड–चित्रों का विधान न होकर अखण्ड मानवीय संस्कृति की संश्लिष्ट योजना है। कथा–स्तर का यह कार्य निश्चित ही उदात्त, महत्तर और असंदिग्ध हो जाता है।

6.4.3 उदात्त चरित्र : उदात्त कथानक और महत्तर धारणाओं को वहन करने वाले नायक के चरित्र को भारतीय आचार्यों से आवश्यक रूप से महासत्त्व, अतिगंभीर, क्षमावान, स्थिर, निगूढ़ अहंकारवान औद दृढ़व्रत गुणों से युक्त माना है। किन्तु 'कामायनी' के महाकाव्यत्व को चारित्रिक दृष्टि से एक शिथिल कृति कहा है किन्तु तथ्य उसके ठीक विपरीत है। धीरोदात्त गुण सभ्यता और संस्कृति की विकसित–अवस्था की उपज है, साथ ही इनका दिव्य रूप वर्णनात्मक, घटनाप्रधान बुद्धिवादी महाकाव्यों मे निखरता है, पर 'कामायनी' में मनु आदि, पुरुष के रूप में अवतरित हैं, और इसमें वस्तु का विन्यास भावात्मक धरातल पर किया गया है। अतएव मनु में धीरोदात्त गुणों के समावेश से मानवता के विकास का लक्ष्य ही खंडित हो जाता, उसका प्रतीकात्मक चमत्कार भी नष्ट हो जाता और वैसी स्थिति में 'कामायनी' सभ्यता या संस्कृति के एकदेशीय, एकयुगीन खण्ड–चित्र को ही प्रस्तुत करने में असमर्थ रहती, अतएव नायक का एक समान मानव के रूप में चित्रण करना 'कामायनी' की कथावस्तु और उदात्त लक्ष्यों की प्राकृतिक माँग है और कवि ने उसका महाकाव्यीय रुढ़ लक्षणों को तोड़कर निर्वाह किया है। प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त, चाणक्य, स्कंदगुप्त आदि धीरोदात्त चरित्र नायकों की संरचना की है अतएव यह संभव नहीं था कि 'कामायनी' की सर्जना के समय उसके नायक के विराट् व्यक्तित्व की कल्पना का प्रश्न ही उनके सामने न उठा हो, किन्तु चरित्र का विधान अन्तर्मुख कथानक और कार्य के

विपरीत तो नहीं किया जा सकता इसलिए उन्होंने मनु का चरित्र विकासशील रूप में ही प्रस्तुत किया, मानवता के विकास की कथा को प्रस्तुत करने के लिए यह वांछनीय भी था। 'कामायनी' में चरित्र का समस्त उत्कर्ष श्रद्धा के व्यक्तित्व में देखा जा सकता है और इस प्रकार नायक के गुणों की क्षतिपूर्ति नायिका के महिमा–मंडित चरित्र द्वारा हो जाती है। नायक के धीरोदात्त लक्षणों का स्थानान्तरण नायिका में करके प्रसाद जी ने महाकाव्य की गरिमा को अखण्ड रखा है। श्रद्धा विश्व की करूणा मूर्ति है, वह मानवीय चेतना की समस्त उदात्त वृत्तियों–दया, माया, ममता, सेवा, सहानुभूति, त्याग, समर्पण, निष्कामता आदि की सजीव प्रतिमा है अतएव उसके चरित्र में विकास का प्रश्न ही नहीं उठता। वह स्वयं मनु अर्थात् मानव को समरसता तथा आनंद के पथ पर ले जाने वाली महत्तम शक्ति है, श्रद्धा के चरित्र–चित्रण में अखण्ड आनंद का वरण करने में समर्थ होते हैं। इस तरह श्रद्धा के ही माध्यम से मनु अखण्ड आनंद का वरण करने में समर्थ होते हैं। इस तरह श्रद्धा के चरित्र–चित्रण में 'कामायनी' की वस्तु–योजना तथा उद्देश्य सम्बन्धी कोई बाधा नहीं थी अतएव प्रसाद जी ने उसका चरित्र उज्ज्वल रूप में प्रस्तुत किया है। यही बात इड़ा के सम्बन्ध में भी रही है। उसका चरित्र भी ऐश्वर्य मंडित है। ऐतिहासिकता के साथ–साथ प्रतीकात्मकता के निर्वाह के प्रश्न भी सम्बद्ध रहने के कारण प्रसाद जी सीमा में बँधे रहे हैं, जो सीमा मनु के साथ है, वही श्रद्धा और इड़ा के साथ भी। अपने वर्तमान रूप में भी 'कामायनी' में इनकी जो चारित्रिक गरिमा है, वह भव्य, उदात्त तथा महाकाव्यीय गुणों से सर्वथा सम्पन्न है।

6.4.4 उदात्त भाव या अंगी रस : भारतीय आचार्यों के अनुसार महाकाव्य में शृंगार, वीर या शांत में से किसी एक रस की प्रमुखता होनी चाहिए। 'कामायनी' में शान्त रस प्रमुख है और शृंगार, वीर, वात्सल्य, भयानक, वीभत्सादि अंगी–रस हैं। शांत रस, निर्वेद न होकर हृदय की उदात्त या आनंदावस्था को लेकर चला है। इसीलिए उसे 'आनंद रस' की संज्ञा प्रदान की गई है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर इस रस का स्वरूप निर्मित किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि रसानुभूति तो एक विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है अतः उसकी दार्शनिक धरातल पर निष्पत्ति मानना कहाँ तक युक्तियुक्त है ? साधारणीकरण की स्थिति में सभी रस उदात्तता से युक्त होते हैं, ऐसी स्थिति में 'आनंद रस' या 'उदात्त शांत रस' अथवा मौलिक अर्थ में शान्त रस ये अभिधायें व्यर्थ हो जाती हैं। 'कामायनी' में समरसतापूर्ण या अभेदमय शांत रस की सत्ता भ्रांतिपूर्ण नहीं है। यदि प्रसाद जी के शब्दों में काव्य को आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति माना जा सकता है तो 'कामायनी' में संकल्पात्मक शान्त रस की स्थिति को सहजता के साथ स्वीकार किया जा सकता है। यह स्थिति एकांकी, शांत या शृंगार की न होकर अखण्ड–रूपेण आत्म रस की है। इस तरह कामायनी की रस या भाव–योजना में भी सर्वथा नवीनता, उदात्तता तथा संश्लिष्टता वर्तमान है।

6.4.5 युग–जीवन तथा प्रकृति के विविध पक्षों का चित्रण : 'कामायनी' में आधुनिक मानवीय जीवन की गंभीरतम समस्याओं का चित्रण किया गया है। आज आत्मवाद, अनात्मवाद, बुद्धिवाद, यंत्रवाद, भौतिकवाद आदि संघातक विचार– धाराओं से विश्व–जीवन कितना आक्रांत है, और वह किस दिशा की ओर अग्रसर हो रहा है, इसका सम्यक् चित्रण 'कामायनी' में उपलब्ध है। युग–जीवन को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने के कारण ही यह महाकाव्य युग–प्रतिनिधि ग्रंथ बन गया है। सार्वदेशिक युग–जीवन का इतना समीचीन प्रतिनिधत्व करने वाला 'कामायनी' की समता का अन्य कोई ग्रंथ आधुनिक काल में नहीं लिखा गया। उसकी यह विशेषता निश्चित ही महाकाव्यात्मक गरिमा से युक्त है।

प्राकृतिक–चित्रण की दृष्टि से भी यह ग्रंथ युग की प्रतिनिधि रचना सिद्ध होता है। इसके लगभग सारे क्रिया–कलाप प्रकृति की गोद में ही सम्पन्न होते हैं अतएव इसका समग्र कलेवर प्राकृतिक सुषमा से संयुत है। आलम्बन, उद्दीपन, भावावृत्त रहस्य, दर्शन, उपदेश, भूमिका, सूचिका, प्रतीक, अलंकार, अन्योक्ति, समासोक्ति, मानवीकरण आदि जितने भी रूपों में काव्य में प्रकृति के वर्णन संभव हो सकते हैं, वे सभी 'कामायनी' में अंकित हुए हैं। इस प्रकार प्रकृति भी कथावस्तु का एक अभिन्न अंग बनकर उपस्थित हुई है। प्रसाद जी प्राकृतिक क्षेत्र में उषा और मधु के कवि हैं, जिसका प्रकाश और माधुर्य उनकी कला–योजना पर भी अक्षय रूप में आदि से अन्त तक पड़ा है।

6.4.6 उदात्त भाषा शैली : उदात्त काव्य के लिए उदात्त भाषा–शैली का प्रयोग सर्वथा आवश्यक होता है। भाषा की गरिमा का मूलाधार है–उपयुक्त तथा प्रभावक पद–विन्यास। लोन्जाइनस के मतानुसार सुंदर, सामंजस्यपूर्ण शब्द योजना ही उदात्त विचारों को आलोक प्रदान करती है। लालित्यपूर्ण भाषा से ही किसी रचना में सुंदर मूर्तियों की भाँति भव्यता, सौन्दर्य, गरिमा, ओज, शक्ति तथा अन्य श्रेष्ठगुणों का आविर्भाव होता है, जिनसे मृतप्राय वस्तुएं भी जीवंत हो उठती हैं। कामायनी की भाषा का सौष्ठव भी ठीक इसी प्रकार का है। सम्यक् शब्द–योजना तथा भाषा की मूर्ति–विधायिनी शक्ति में प्रसाद जी अप्रतिम हैं। शब्द की लक्षणा तथा व्यंजना शक्तियों का प्रयोग करने के कारण 'कामायनी' की गणना ध्वनि काव्य में होती है, जिसे भारतीय आचार्यों ने एक स्वर में श्रेष्ठ काव्य कहा है। कवि–कर्म–जन्य वक्रोक्तियों की भी 'कामायनी' में अतिशयता है। अप्रस्तुत–योजनाओं का रूप, गुण, धर्म, प्रकृत्ति, रंग, प्रभाव आदि की दृष्टि से समीचीन प्रयोग भी इस ग्रंथ की अन्यतम उपलब्धियाँ हैं जो उसे उदात्त और महाकाव्यात्मक गरिमा से युक्त कर देती हैं। इसमें छायावादी काव्य के समस्त कलापक्षीय लक्षणों का चरम स्वरूप देखा जा सकता है। छायावाद वस्तु की दृष्टि से लाक्षणिकता, व्यंजनात्मकता, ध्वन्यर्थता, प्रतीकात्मकता आदि उसके प्रमुख अवयव रहे हैं। 'कामायनी' की वस्तु–योजना युगप्रभाव के अनुकूल भावात्मक ही रही है, और अपनी वस्तु के अनुरूप उसकी कलात्मक संरचना उसे छायावाद युग की प्रतिनिधि एवं अन्यतम कृति बना देती है।

भाषा–शैली की उदात्तता तथा असाधारणता ने 'कामायनी' को युगानुरूप प्रगीतात्मक उन्मेष प्रदान किया है जिसके कारण इसमें वर्णनात्मक तथा इतिवृत्तात्मक अंशों का सर्वथा अभाव हो गया है। संपूर्ण कथा का विकास आत्म–चिंतन, संवाद, स्वगतकथन, स्वप्न या प्राकृतिक दृश्य–विधानों के माध्यम से किया गया है, इस प्रक्रिया से 'कामायनी' में नाटकीय और अभिनेय तत्त्वों का भी आधिक्य हो गया है और यह एक सर्वथा कलात्मक कृति बन गई है।

महाकाव्य की शैली में नाना वर्णन क्षमा, विस्तार–गर्भा, अतीव प्रवाहमयता आदि विशेषताओं का होना भी आवश्यक माना गया है। 'कामायनी' में सूक्ष्म और व्यापक, मूर्त और अमूर्त, मानसिक और भौतिक सभी तत्त्वों का समान रूप से चित्रात्मक वर्णन किया गया है किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है, 'कामायनी' का वस्तु विधान अन्तर्मुखी है अतएव इसमें विविध भावों, अनुभावों और संचारियों के ही सजीव चित्र सर्वाधिक रूप से मिलते हैं, वस्तुगत वर्णन तथा विस्तारगर्भत्त्व की विशेषतायें वर्णनात्मक महाकाव्यों में ही पायी जाती हैं। भावोन्मेषों अंतसंघर्षों, या आत्मोद्‌गारों की अतिशयता के कारण प्रवाह में सर्वत्र तीव्रता, उत्कटता, और संवेदनशीलता भी विद्यमान है। समग्रतः 'कामायनी' की भाषा–शैली, निश्चित ही उदात्त तत्त्वों से युक्त है और उसमें महाकाव्य की पूर्ण गरिमा समाहित है।

6.4.7 छंद और सर्गबद्धता : भारतीय महाकाव्य के निर्धारित लक्षणों के अनुसार 'कामायनी' के प्रत्येक सर्ग में आद्यंत एक ही छंद का प्रयोग भी किया गया है।

'कामायनी' में कुल 15 सर्गों का विधान है। सर्गों का नामकरण उनमें निहित मूल भावना–व्यापारों के आधार पर ही किया गया है। कुछ सर्गों के अंत में अगले सर्ग की कथा का पूर्वाभास भी व्यंजनात्मक रूप से प्रस्तुत कर दिया गया है, यथा चिंता, काम, स्वप्नादि सर्गों में। इस प्रकार छंद–विधान तथा सर्गबद्धता भी 'कामायनी' में महाकाव्य की गरिमा से रहित नहीं हैं।

6.4.8 नामकरण : कृति का नामकरण नायिका के नाम के आधार पर किया गया है। काम की पुत्री होने के कारण श्रद्धा का दूसरा नाम कामायनी है। कामायनी में श्रद्धा आद्याशक्ति की इच्छा का ही संदेश सुनाने के लिए अवतरित हुई है। 'काम गोत्रजा' से भी यही ध्वनि निकलती है–काम के गुणों से युक्त भावना। सृष्टि–विकास के मूल में काम तत्त्व ही विद्यमान रहता है, 'कामायनी' में श्रद्धा ही मनु को काम–पथ पर अग्रसर करती है और वही उन्हें पूर्ण काम–परम पुरुषार्थमय भी बनाती है। इस दृष्टि से ग्रंथ का नामकरण अतीव सार्थक है।

नायक मनु काम–मार्ग पर अग्रसर होने वाला एक सामान्य पथिक मात्र है, वे काम या इच्छा–लोक में निराधार भटकते रहते हैं, उनका चरित्र भी उदात्त तथा महाकाव्यी गरिमा से युक्त नहीं है, वस्तुतः उनके द्वारा मानव से मानवता के आनंद तक की यात्रा प्रस्तुत करना इस ग्रंथ का प्रमुख साध्य रहा है, श्रद्धा जिसकी मूल प्रेरणा का केन्द्र है :

'भाव चक्र यह चला रही है, इच्छा की रथ नाभि घूमती
नव रस–भरी अराँए अविरल, चक्रवाल को चकित चूमती।'

अतः 'मनु' अर्थात् नायक का नाम भी उसके क्रिया–व्यापारों के आधार पर नामकरण करने से महाकाव्य की समष्टिगत वक्रोक्ति विघटित हो जाती है। जबकि नायिका के नाम के आधार पर इसका मूल संदेश तथा नायक के क्रिया –व्यापरों का प्रतिनिधित्व हो जाता है। श्रद्धा नाम रखने से नायक की विशेषतायें ध्वनित न हो पातीं अतः यह नाम समग्र कृति के संप्रभाव और वैशिष्ट्य का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता। कामायनी को स्वयं प्रसाद जी ने जगत् की अकेली मंगलकामना तथा मानस तट की ज्योतिमयी प्रफुल्लित वन–वेलि कहा है। व्यंजनात्मक रूप से यही वस्तु 'कामायनी' की समरसता और आनंदवाद का स्वरूप भी प्रस्तुत करती है। अतएव समग्र दृष्टियों से यह नाम गरिमामंडित है। नायिका के आधार पर नामकरण की यह परंपरा भी सर्वथा नवीन और युगान्तरकारी है।

6.5 सारांश

इस तरह उदात्त काव्य के सारे तत्त्व 'कामायनी' में अपने चरम रूप में विद्यमान हैं। भारतीय आचार्यों के महाकाव्य के लक्षणों एवं नायक की धीरोदात्तता को छोड़कर शेष समस्त तत्त्व भी कामायनी में अपनी परिपूर्ण गरिमा के साथ उपस्थित हुए हैं। इसकी कथानक–योजना पर आधुनिक स्वच्छंतावादी काव्य–प्रवृत्तियों का गहरा प्रभाव पड़ा है और वह बुद्धिवादी या वर्णनात्मक न होकर भावात्मक–रूप में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु मानव चेतना की अखिलता से संबद्ध

होने के कारण ये पक्ष भी इस महाकाव्य में उदात्तता, विद्यमानता से यह ग्रन्थ और भी अधिक महत्त्वपूर्ण गरिमा को लेकर प्रस्तुत हुआ है। तथा हिन्दी की एक अद्‌भुत उपलब्धि बन गया है। अन्य आधुनिक महाकाव्य इसकी उदात्तता, गुरूता, गंभीरता, महत्ता, सार्वदेशिकता आदि की तुलना नहीं कर सकते।

6.6. कठिन शब्द

1)	धीरोदात्त	5)	प्रत्यभिज्ञा	9)	उन्मेष
2)	सांगोपांग	6)	श्लाघ्य	10)	संबद्ध
3.	भावोन्मेष	7)	अतिचार		
4)	संप्रभावक	8)	संश्लिष्ट		

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1. कामायनी के महाकाव्यत्व पर प्रकाश डालिए?

_____

_____

_____

प्र2 कामायनी की कथावस्तु का विवचन कीजिए।

_____

_____

_____

6.8 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

1) कामायनी : एक अध्ययन : डॉ नगेन्द्र।

2) कामायनी अनुशीलन – रामलाल सिंह।

3) कामायनी एक पुनर्विचार – मुक्तिबोध।

4) प्रसाद का काव्य–प्रेमशंकर।

5) कामायनी मूल्यांकन और मूल्यांकन– इन्द्रनाथ मदान।

.....

कामायनी में इतिहास और कल्पना

7.0 रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 कामायनी में इतिहास और कल्पना

7.3 सारांश

7.4 कठिन शब्द

7.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.6 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

7.1 उद्देश्य : प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

1) कामायनी में इतिहास एवं कल्पना के सुंदर सम्मिश्रण से अवगत हो सकेंगे।

2) प्रसाद जी द्वारा दार्शनिक सिद्वान्तों के आधार पर कथा को नवीन मोड़ दिया गया है उसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3) कामायनी में जो मौलिक नवीन उद्भावनाएँ की गई हैं उसकी जानकारी प्राप्त करेंगे।

4) कामायनी के माध्यम से आधुनिक युग को दिये गए संदेश से अवगत हो सकेंगे।

7.2 कामायनी में इतिहास और कल्पना

कामायनी का प्रारम्भ महाकवि प्रकृत्ति के उग्र वातावरण के माध्यम से करता है। प्रकृत्ति का झंझावात एवं महाजलप्लावन की विकराल लहरें विलासिता की नदी में थिरकती हुई देवजाति को सदा के लिए अपने में समा देने के लिए उद्यत हैं। समुद्र मर्यादाहीन हो गया है, पृथ्वी कांप रही है, दिशाओं का अस्तित्व छिप गया है। पृथ्वी कोलाहल से काँप रही थी और सृष्टि धीरे–धीरे जलासीन होती जा रही थी। प्रकृति एवं देवजाति के विषम संघर्ष में देवजाति का

अस्तित्व समाप्त हो गया है और जल का अथाह सागर अपने आप में हर्षानुभव कर रहा था। ऐसी विकट परिस्थिति में एक पुरुष मर्मवेदना को लिए हुए प्रकृति का भीषण उपद्रव अपने भीगे नेत्रों से देख रहा था। उसके ऊपर हिम प्रदेश की गगनचुम्बी शिखाएं शान्ति एवं शोक की सूचना दे रही थीं तो नीचे प्रलय का प्रवाह देवजाति के अस्तित्व को समाप्त कर मुस्करा रहा था–

हिम गिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष, भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह।
नीचे जल था, ऊपर हिम था
एक तरल था एक सधन
एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।
दूर–दूर तक विस्मृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान,
नीरवता सी शिला चरण से
टकराता फिरता पवमान।
तरूणा तपस्वी–सा वह बैठा
साधन करता सुर–श्मशान
नीचे प्रलय सिंधु लहरों का,
होता था सकरूण अवसान।

जलप्लावन की मर्यादा टूटने लगी, जल के उतार में भी अंतर आ गया। चिन्ता में निमग्न मनु के हृदय में आशाओं का सेतु बनने बिगड़ने लगा। इसी परिस्थिति में मनु को अपने प्राचीन वैभव एवं अतीत का स्मरण हो उठता है। जिससे उनके युगल नेत्र चित्रपट की तरह अपने आप में अनेक चित्र समेटने लगते हैं।

इसी बीच उन्हें जलप्लावन के विकासक्रम का स्मरण होता है जिससे उनके मानस पटल पर प्रकृति के विकराल रूप का चित्र अंकित हो जाता है। प्रलयकालीन भयंकर परिस्थितियों के चित्रण में निश्चय ही प्रसाद जी का कोई सानी नहीं। 'कामायनी' का आरम्भ ही अत्यन्त भयानक एवं करूणा विगलित दशाओं से किया गया है जो स्वतः पाठकों को अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है।

जलप्लावन भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का ही कथानक नहीं है, अपितु विश्व संस्कृति का एक भयानक एवं मार्मिक प्रसंग है। जलप्लावन भारतीय संस्कृति में एक महत्वपूर्ण घटना है। इस कथा का पोषण सदियों तक धार्मिक ग्रन्थों में ही होता रहा है और आज भी विश्व की अनेक संस्कृतियों में हो रहा है। कुछ विकसित भाषाओं के साहित्य में इसे अवश्य स्थान

प्राप्त हुआ है। परन्तु इसकी मूल कथा का रूप विश्व की अनेक संस्कृतियों में अलग–अलग ढंग से वर्णित है। कथा की अनेकरूपता के भी अनेक कारण माने जा सकते हैं जिसमें कथानक की मौलिकता प्रधान है। होमर ने कहा है–'सूर्य सागर के प्रवाह की ओर भागा जा रहा है। सागर, निर्झर सरोवर सभी महासागर से निकले हैं, जो पृथ्वी को घेरे हुए हैं। सूर्य स्वर्ण नौका में पश्चिम से पूर्व की ओर जा रहा है।' यूनानी संस्कृति में जलप्लावन की कथा का विकास दो रूपों में हुआ है। Dgygian Deluge के अनुसार अटिका जलमय हो गया था। अन्य कथा Deukalion Flood की है। इसका वर्णन 140 ई॰ पूर्व (Appollodorus) अपालोडोरस ने अपनी पुस्तक Billiliotheca 1–7–2 में किया है। Zeus ने अपने पिता की इच्छा पूर्ति के लिए ताम्रयुग के व्यक्ति Deukalion का विनाश करना चाहा। अपनी रक्षा के लिए अपने एक कवच का निर्माण किया। उसी में वह अपनी पत्नी Pyrrha के साथ बैठ गया। Zeus ने भीषण जलवृष्टि से समस्त पृथ्वी को डुबा दिया। सभी कुछ विनष्ट हो गया। वे दोनों पति पत्नी नो दिन के पश्चात् पैरासस स्थान पर पहुँचे। उसी समय जलप्लावन कम हुआ। यहीं उन्होंने देवताओं के लिए अपने अंग रक्षक की बलि दे दी। प्रसन्न होकर Zeus ने उनकी इच्छा जानने का प्रयत्न किया। उन्होंने सन्तान की कामना प्रकट की। इस पर पत्थर फेंके गये। जो Deukalion ने फेंके वे पुरुष और जो Pyrrha ने फेंके वे नारी हो गये। इसी प्रकार बाइबिल के देवता नूह को किसी प्रकार जलप्लावन की घटना की जानकारी हो जाती है और वह अपने तथा अपने दोस्तों के साथ एक नाव में बैठ जाता है और अपनी रक्षा करता है। नौका जल वेग के साथ प्रवाहित होती अराकान पर्वत पर रुक गई। दसवें मास के प्रथम दिन जब जलप्लावन का वेग उतर गया तो नूह प्रसन्नतापूर्वक नीचे उतरा तथा भावी सृष्टि की रचना की। विश्व संस्कृतियों में वर्णित जलप्लावन की कथा से नाव एवं पर्वत विशेष सम्बन्धित हैं। शतपथ ब्राह्मण में भी कहा गया है कि मनु की नौका उत्तर गिरि के पास एक वृक्ष के सहारे रुकी थी।

इसी प्रकार बेबीलोनिया के साहित्य में जलप्लावन की घटना का उल्लेख प्राप्त होता है। भारतीय साहित्य में जलप्लावन की घटना का विकास अनेक–रूपों में हुआ है। एक ही संस्कृति में इसी कथानक के अनेक रूप प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु कथानक का मूल रूप शतपथ ब्राह्मण में ही सुरक्षित है। शतपथ ब्राह्मण के आठवें अध्याय में कहा गया है–एक दिन प्रातः काल जब मनु ने आचमन के लिए हाथ में जल लिया तो उसमें एक छोटी मछली दिखाई पड़ी। उसने मनु से कहा कि मेरा पालन करो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। मनु के यह पूछने पर कि तुम कैसे मेरी रक्षा करोगी, मछली ने बताया कि जलप्लावन होने वाला है। जिसमें सभी प्रजा नष्ट हो जायेगी, मैं उसी से तुम्हारी रक्षा करुँगी। मनु ने उसे पहले कुम्भ में, फिर गड्ढे में रखा और अन्त में छोड़ दिया। महामत्स्य बन कर उसने मनु से कहा कि अमुक वर्ष में अमुक तिथि को जल–प्रलय होगा, तुम एक नाव तैयार करके उसमें बैठ जाना। मनु ने ऐसा ही किया। जलप्लावन प्रारम्भ होने पर वह महामत्स्य मनु की नाव के पास आई, मनु ने एक रस्सी से नाव को मत्स्य के सींग में बाँध दिया। मत्स्य उसे खींचकर उत्तर गिरि के पास ले गया और मनु से कहा कि अब मैंने तुम्हारी रक्षा कर दी, अपनी नाव वृक्ष से बाँध दो। ज्यों–ज्यों जल नीचे उतरता है त्यों–त्यों नाव द्वारा तुम भी नीचे उतरते जाना। मनु ने ऐसा ही किया और इसीलिए उस स्थान या अवतरण–पथ को 'मनोरवसर्पण' कहा जाता है। ओध के समाप्त होने तक सभी प्रजा नष्ट हो चुकी थी, अकेले मनु बचे रह गए। इसी कथा से मिलती–जुलती कथा का विकास महाभारत में भी हुआ है। परन्तु इस कथा में मनु के साथ सप्तऋषियों के बचने का भी उल्लेख मिलता है। भारतीय संस्कृति जलप्लावन की घटना से विशेष प्रभावित है। तभी तो इस घटना का वर्णन आग्नेय पुराण, विष्णु पुराण, भागवत् पुराण,

पद्म पुराण, स्कन्द पुराण, कालिका पुराण, भाविष्य पुराण आदि में हुआ है।

विश्व इतिहास के पृष्ठों में बिखरी जलप्लावन की कथा को देखने के पश्चात् हमें जलप्लावन की वैज्ञानिकता के विषय में भी समझ लेना चाहिए। यदि इस कथा की वैज्ञानिकता सिद्ध हो जाती है तो निश्चय ही ऐतिहासिकता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। भूगर्भ शास्त्रियों की धारणा है कि समयानुसार पृथ्वी के विशेष खंड समुद्र में डूब जाते हैं। भूमि पर जल ही जल हो जाता है। बहुत समय तक सागर ही सागर दिखाई पड़ता है। धीरे–धीरे पृथ्वी का ऊँचा भाग जल में गलने लगता है और सागर की तलहटी में तमाम तलछल जमा होती रहती है। तभी क्रमशः स्थिति में परिवर्तन होता है और पर्वत खड़े हो जाते हैं। डॉ॰ वाडिया का विचार है कि प्राचीन काल से ही हिमालय और तिब्बत के निकट समुद्र का मल इकट्ठा होता रहा। क्रमशः वह ऊपर उठने से ऊँचा होने लगा। अन्त में सागर विलीन हो गया और उसके स्थान पर संसार का महान हिमालय पर्वत दृष्टिगोचर होने लगा।

भारतीय संस्कृति एवं विश्व–संस्कृति के प्रसिद्ध कथानक की वैज्ञानिकता समझने के पश्चात् अब हमें कामायनी की कथा की पृष्ठभूमि समझ लेनी अत्यावश्यक है जिस से कामायनी की ऐतिहासिकता समझने में किसी प्रकार की परेशानी नहीं उपस्थित हो सकती है। प्रसाद जी ने स्वयं कामायनी की कथा की ऐतिहासिकता स्वीकार की है–'आर्य–साहित्य में मानवों के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराण और इतिहास में बिखरा मिलता है। श्रद्धा और मनु के सहयोग से मानवता के विकास की कथा को रूपक के आवरण, चाहे पिछले काल में मान लेने का वैसा ही प्रत्यन हुआ जो जैसा कि सभी वैदिक इतिहासों के साथ निरूक्त के द्वारा किया गया, किन्तु मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्त्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुभूति में दृढ़ता से मानी गई है। इसलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष ही मानना उचित है। जलप्लावन भारतीय इतिहास में एक ऐसी ही प्राचीन घटना है, जिसने मनु को देवों से विलक्षण मानवों की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया। वह इतिहास ही है। इस घटना का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के आठवें अध्याय में मिलता है। देवगण के उच्छृङ्खल स्वभाव, निर्बाध आत्मतुष्टि में अन्तिम अध्याय लगा और मानवीय भाव अर्थात् श्रद्धा और मनन का समन्वय होकर प्राणी को एक नये युग की सूचना मिली। इस मन्वन्तर के प्रवर्त्तक मनु हुए। मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरुष हैं। राम, कृष्ण और बुद्ध इन्हीं के वंशज हैं। शतपथ ब्राह्मण में उन्हें श्रद्धा देव कहा गया है, "श्रद्धा देवों वै मनु" भागवत् में इन्हीं वैवस्वत मनु और श्रद्धा से मानवीय सृष्टि का प्रारम्भ माना गया है।

प्रसाद जी की कामायनी का मूल आधार शतपथ ब्राह्मण ही है परन्तु प्रसाद जी ने शतपथ की कथा को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया है। इस कथा को अपने युग एवं विचार के अनुकूल प्रसाद जी ने ढाल लिया है। आधुनिक युग की मान्यताओं एवं विचारधारा के अनुसार कामायनी का मूल्यांकन किया जाये तो यह कहना पड़ेगा कि कामायनी की कथा ऐतिहासिक नहीं है क्योंकि इस कथा का सम्बन्ध प्रागैतिहासिक काल से है। भारतीय अतीत के खण्डहरों में पुराणों एवं वेदों का खोजपूर्वक अध्ययन किया जाये तो पता चलेगा कि ये काव्य मूलतः प्राचीन इतिहास ही हैं। पाश्चात्य विद्वान पार्जिटर ने इस मत को स्वीकार किया है कि वास्तव में पुराण भारतीय इतिहास की धरोहर हैं। पुराणो में वर्णित राजाओं एवं उनके परिवारों की कथा का क्रम नहीं है, इसका मूल कारण पुराण जनों द्वारा उनका चरित्रांकन है। पुरा वेत्ताओं की पीढ़ी युगों तक पुराण की कथा को मौखिक याद रखे हुए थी। अस्तु इसकी घटना में काफी उलट फेर दिख पड़ता है।

हमारे पुराणों के अनुसार आदि क्षत्रिय वंश मुख्यतः तीन थे–

1. सूर्य वंश
2. चन्द्र वंश
3. यदु वंश

इन तीनों वंशों के पूर्वज मनु ही हैं। पुराणों के अनुसार मनु के सात पुत्र थे। परन्तु कामायनी में प्रसाद जी ने मनु का एक ही पुत्र (शयोति या मानव) माना है। इक्ष्वाकु वंश से सूर्य वंश की उत्पत्ति हुई जिसमें दिलीप, रघु, अज और बाद में चलकर राम जैसे महामानव का आविर्भाव हुआ। *वशिष्ट* के शाप से इला (इड़ा) के रमणी हो जाने पर बुद्ध उससे मोहित हो गया, जिससे पुरूरवा की उत्पत्ति हुई। यदु वंश में सबसे प्रतापी कृष्ण और चन्द्र वंश में प्रातः स्मरणीय महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ। काव्य इतिहास के पृष्ठों से मनोरम एवं भावपूर्ण कथानक लेता है और उसे अपनी कल्पना के रंगों से अलंकृत करता है। अतीत के गर्त में छिपी घटनाओं को यथार्थ रूपेण वर्णन कर देना इतिहास है और उसमें भावुकता एवं तर्क का समावेश कर देना काव्य है। काव्य इतिहास से केवल कथानक का आधार ग्रहण करता है और युग एवं कल्पना से सहसम्बन्ध स्थापित कर अपने वास्तविक रूप का विज्ञापन देता है। ऐतिहासिक काव्यकार के लिए ऐतिहासिक वातावरण बनाना पड़ता है और उसी के अनुरूप अपने कथानक का विकास करता है। यदि वह अपने कथानक के वातावरण का निर्वाह अच्छी तरह नहीं कर पाता है तो निश्चित ही उसका काव्य निम्नकोटि का हो जाता है। कामायनी के कवि ने अपने काव्य के कथानक को उचित वातावरण में ढालने का प्रयास किया है और उसे सफलता भी मिली है।

कवि को कथानक की कड़ियों को जुटाने में कल्पना का काफी सहारा लेना पड़ा है। इसका उल्लेख कवि ने स्वयं अपने आमुख में कर दिया है। कामायनी का पूर्वार्द्ध भाग पूर्णतया इतिहास के पृष्ठों पर आधारित है। जिसका सम्बन्ध किसी न किसी रूप से शतपथ ब्राह्मण से है। जहाँ पर कामायनी के कथानक पर शतपथ का विशेष प्रभाव है वहीं पर मूल कथा में कवि ने काफी परिवर्तन भी किया है। शतपथ के अनुसार मनु की नाव मत्स्य के सींग में बँधी थी परन्तु कामायनी में मनु की नाव मत्स्य की चपेट से उत्तुंग शिखर पर पहुँचती है। परिवर्तन का मूल कारण इतिहास की सुरक्षा है। आदि पुरुष जो प्रलय के झंझावत से लड़ते हुए जीवन की मंजिल पर पहुँचता है उसका उल्लेख करते हुए कवि लिखता है–

अवयव की दृढ़ मांस–पेशियाँ,
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिरायें, स्वस्थ रक्त का,
होता था जिसमें संचार।
चिंता–कातर वदन हो रहा,
पौरूष जिसमें ओतप्रोत
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत।
बँधी महावट से नौका थी,

सूखे में अब पड़ी रही,
उतर चला था वह जल–प्लावन
और निकलने लगी मही।
निकल रही थी मर्म वेदना।
करूणा विकल कहानी सी,
वहां अकेली प्रकृति सुन रही,
हंसती सी पहचानी सी।

शतपथ के अनुसार प्रलयकालीन स्थिति के समाप्त होने पर मनु यज्ञ करते हैं और अवशिष्ट अन्न को देखकर उनके पास श्रद्धा का आगमन होता है। परन्तु कामायनी में अवशिष्ट अन्न को देखकर श्रद्धा किसी जीवित प्राणी की तलाश में आती है और उसकी भेंट मनु से होती है। इस परिवर्तन का मूल कारण कवि की अपनी कल्पना है, जिसका आधार कथानक को आगे बढ़ाना है। प्रसाद का कवि श्रद्धा मिलन के साथ का दृश्य प्रस्तुत करते हुए श्रद्धा सर्ग में लिखता है–

कौन तुम? संसृति–जलनिधि तीर
तंरगों से फेंकी मणि एक,
कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा से अभिषेक?
मधुर विश्रांत और एकान्त–
जगत का सुलझा हुआ रहस्य,
एक करूणामय सुन्दर मौन,
और चंचल मन का आलस्य।

जीवन से हार माने हुए मनु को श्रद्धा के द्वारा प्रेरणा प्राप्त होती है। श्रद्धा इसी प्रसंग में मनु को शैवागम दर्शन के कुछ सिद्धान्त बताती है। मनु का इड़ा के प्रति आकर्षित होना, इड़ा को मनु की दुहिता बताना, इड़ा से प्रेम सम्बन्ध स्थापित करना आदि घटनाएं शतपथ के अनुकूल हैं और कामायनी के सौन्दर्य को उद्दीप्त करने में विशेष सहायक होती हैं। जहाँ पर कवि ने कामायनी के पूर्वार्द्ध की घटनाओं को इतिहास के पृष्ठों से जोड़ने का प्रयास किया है वहीं पर कामायनी के उत्तरार्द्ध की घटनाएं प्रायः अधिकांश कल्पित हैं। कवि का लक्ष्य सदैव अपने कथानक की पूर्णता की ओर रहता है, अस्तु कथानक को निर्बाध गति से गतिशील करने के लिए अपनी कल्पना का विशेष सहारा लेना पड़ता है। यही कारण है कि कामायनी के उत्तरार्द्ध की घटनाएं जैसे श्रद्धा का स्वप्न, श्रद्धा का मनु से युद्ध भूमि में मिलन, मनु, इड़ा एवं श्रद्धा का वार्तालाप मनु का दुःखित होना और भाग जाना इत्यादि घटनाएँ केवल कथानक के विकास में ही सहायक होती हैं।

कामायनी के कथानक में प्राचीनता होने के कारण पात्रों के साथ रूपक तत्व भी काम करते हैं। कामायनी की घटनाओं का सम्बन्ध मनुष्य के दैनिक जीवन से मेल खाता है। इस के कथानक का विकास भी मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होने वाली भावनाओं के साथ सम्बन्धित है। यदि प्रलयकालीन स्थिति से मनु भयभीत हैं तो स्वतः उनके हृदय में अपने विगत जीवन के

ढहते हुए खंडहरों के प्रति मोह है। प्रलय का अवसान होते होते उनके हृदय में आशा का संचार होता है और क्रमशः श्रद्धा काम आदि तत्वों के विकास से मनु की मानसिक स्थिति का ज्ञापन पाठकों को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार कामायनी के रूपक तत्व भी बड़े ही उत्कृष्ट हैं। प्रसाद जी ने स्वतः कामायनी की ऐतिहासिकता के साथ इसके रूपक तत्व को भी स्वीकार किया है–'यह उपाख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है। इसलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक आस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है–श्रद्धा, हृदय माकूत्या श्रद्धया विन्दतेवसुः। (ऋग्वेद 10–151–4) इन्हीं सब के आधार पर कामायनी की कथा सृष्टि हुई है।

इस संक्षिप्त विवेचन से हमें प्रसाद जी के व्यापक एवं गहन अध्ययन की जानकारी हो जाती है। सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय का मंथन कर प्रसाद जी ने उसके तत्व को भारतीय संस्कृति के खंडहरों से ढूँढ निकालकर अपने चिन्तन युग के अन्तिम चरण में जो 'कामायनी नाम का रत्न' अपने पाठकों को दिया उसकी तुलना हिन्दी में लिखे गए अब तक के काव्यों से सम्भव नहीं है। कामायनी अपने आप में भारतीय अतीत का इतिहास प्रकट करते हुए भी अपने उत्कृष्ट रूपकों के द्वारा हिन्दी जगत् के पाठकों को अपनी तरफ आकर्षित कर लेती है।

जलप्लावन की विकरालता के समक्ष, सम्पूर्ण जड़ चेतन जीवन एवं भौतिक जीवन के उपादानों का अन्त हो गया है। एक तरफ हिम प्रदेश का उत्तुंग शिखर शान्ति एवं शालीनता को प्रकट कर रहा था तो दूसरी तरफ अथाह् जल सागर लहरों के कोड़ों से जड़ चेतन जगत् को थपेड़े दे रहा था। कवि हृदय की वेदना का विकास इतनी द्रुतगति से होता है कि उसकी काल्पनिक वेदना का सम्बन्ध मनु की करूणा–जन्य व्यथा से हो जाता है। समाज एवं संस्कृति के अस्तित्व के समाप्त हो जाने पर महाकवि को अपने नायक मनु के परितोष के लिए श्रद्धा को शीघ्र मिलाने की आवश्यकता थी। इसलिए वहां श्रद्धा का मिलन निश्चय ही काफी समय पश्चात् हुआ होगा। परन्तु प्रसाद जी अपने कथानक को अबाधगति से आगे बढ़ाने के लिए इनका मिलन शीघ्रातिशीघ्र कराते हैं। ऐतिहासिक प्रबन्धकार के लिए घटनाओं के संयोजन के लिए काफी छूट होती है अतः प्रसाद जी ने भी छूट का लाभ यथास्थान उठाया है। प्रोफेसर भारत भूषण सरोज का कहना है–'कवि का साध्य है मनु तथा श्रद्धा के संयोग से मानव सृष्टि का विकास। मानव सृष्टि की उत्पत्ति, जल प्लावन द्वारा देव–सृष्टि के विध्वंस के पश्चात् ही होती है। अतः कवि श्रद्धा तथा मनु के पूर्व ऐतिहासिक वृत्त को नहीं लेता। इसी प्रकार श्रद्धा और मनु का वृत्तान्त उनकी मृत्यु पर्यन्त चलता रहा होगा। किन्तु कवि उसका अन्त अपने साध्य की प्राप्ति पर ही कर देता है। काव्यकार इतिहास की भाँति घटनाओं अथवा पात्रों का यथासाध्य चित्रण नहीं करता। वह अपने लक्ष्य के अनुसार उसमें काट–छाँट करता चलता है। कवि का दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक होता है, बाह्य घटनाओं का लेखा जोखा करना उसका उद्देश्य नहीं। कवि की धारणा है कि बिना इच्छा, ज्ञान और क्रिया के समन्वय के आनन्द की प्राप्ति सम्भव नहीं। इन तीनों के मिलन के लिए हृदय तत्व अपेक्षित है। इसी दृष्टि से उसने श्रद्धा (हृदय) के बहाने से इच्छा, ज्ञान और क्रिया तीनों का समन्वय दिखाया है।

इतिहास व्यक्ति की अभिव्यक्ति करता है तो काव्य व्यक्ति द्वारा जाति की। इतिहास में श्रद्धा व्यक्ति ही है किन्तु काव्य में वह नारी जाती का प्रतिनिधित्व कर रही है। पुराणों में श्रद्धा के नारीत्व का विकास नहीं मिलता। वह एक साधारण स्त्री के रूप में ही हमारे समक्ष आती है। श्रद्धा के व्यक्तित्व का विकास दिखाने के उद्देश्य से कवि को घटनाओं का क्रम उलटना पड़ा है। यहाँ कवि की अपनी ऐतिहासिक कल्पना भी कार्य करती दृष्टिगत होती है। श्रद्धा का मनु को आत्मसमर्पण कवि

की अपनी कल्पना है। यहां–श्रद्धा नारीत्व के सभी गुणों सेवा, दया, माया, ममता, त्याग, करूणा आदि से परिपूर्ण है। वह भारतीय साहित्य की एक अनुपम नारी है। इस प्रकार के भव्य नारीत्व की सृष्टि कवि की ऐतिहासिक कल्पना द्वारा ही सम्भव हो सकी है।''

भारतीय साहित्य में मनु के दो रूप चित्रित हैं–(1) स्मृतिकार का रूप (2) प्रजापति रूप। प्रजापति मनु एक हैं या दो इसके विषय में काफी मतभेद हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा का विचार है कि हमारे यहां भी मन्वन्तर के प्रवर्त्तक मनु और मानव धर्मशास्त्र के प्रणेता मनु के एक या भिन्न अस्तित्व के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद हैं। परन्तु वेद में मनु की स्थिति की परीक्षा के उपरान्त यह मान लेने के लिए बहुत अवकाश रह जाता है कि मनुस्मृति के प्रणेता और मन्वन्तर प्रवर्तक भिन्न हो सकते हैं परन्तु प्रसाद जी ने प्रजापति मनु और नियामक मनु को एक ही माना है। सारस्वत प्रदेश में कवि ने मनु को नियामक बनाकर उनको स्मृतिकार के रूप को व्यक्त किया है। ऋग्वेद, शतपथ तथा पुराणों में श्रद्धा एक भव्य तथा विश्वसनीय नारी के रूप में चित्रित की गई हैं। त्रिपुर रहस्य तथा छान्दोग्योपनिषद् में श्रद्धा की भावमूलक व्याख्या ही अधिक पाई जाती है। प्रसाद जी ने कामायनी में श्रद्धा के इस व्यक्तित्व को विशद रूप में अंकित किया है। स्त्री जाति की सेवा, दया, माया, करूणा, ममता आदि की सभी विशेषताओं की मानो वह प्रतीक है। ऋग्वेद में इड़ा को मनु की पथप्रदर्शिका कहा गया है। शतपथ में भी इड़ा द्वारा मनु को यज्ञ में अतुल सम्पत्ति मिलती है। कामायनी में भी कवि ने उसके व्यकितत्व की रक्षा के लिए ही उसे सारस्वत प्रदेश में मनु की पथ–प्रदर्शिका बनाया है। मनु को सारस्वत–प्रदेश का शासक बना देने से उन्हें अतुल सम्पत्ति की भी प्राप्ति होती है। पशु यज्ञ में किलाताकुलि को पुरोहित बनाना शतपथ के आधार पर है। कामायनी में श्रद्धा, मनु, इड़ा किलाताकुलि तथा मानव ये छः ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। कवि को यद्यपि विश्रृङ्खल घटनाओं को कथात्मक रूप देने के लिए इनसे सम्बन्धित कथाओं में थोड़ा उलट–फेर करना पड़ा है। किन्तु इससे किसी भी ऐतिहासिक व्यक्ति के व्यक्तित्व पर कोई आघात नहीं पहुँचने पाया है।

सारस्वत–प्रदेश को जिस सरस्वती नदी के तट पर स्थित माना गया है, वह पंजाब में न होकर गांधार प्रदेश में था। यह प्रसाद जी ने अपनी खोज के आधार पर सिद्ध किया था। अतः कामायनी के 'सारस्वत' प्रदेश को गांधार का समीपवर्ती स्थान मानना चाहिये। यहां के ध्वंसावशेषों पर ही मनु ने सभ्यता का प्रसार किया। इसका चित्रण पुराणों में वर्णित इड़ा–वृत्त के आधार पर किया गया है और ऋग्वेद में इड़ा के लिये प्रयुक्त सभी विशेषणों की सहायता से उसके चरित्र का विकास किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में इड़ा की उत्पत्ति मनु के मैत्रावरूण यज्ञ से मानी गई है। प्रसाद जी ने नायक की गौरव–रक्षा के लिए इस कथांश को छोड़ दिया है। (इड़ा को मनु की पुत्री नहीं बताया है), केवल 'आत्मजा प्रजा' कहकर इसका संकेत–मात्र कर दिया है। सारस्वत–प्रदेश में मनु के अनैतिक आचरण पर देव–शक्तियाँ क्षुब्ध हो जाती हैं अैर रूद्र अपने बाण से मनु को मूर्च्छित कर देते हैं कामायनी में प्रसाद जी ने इस ऐतिहाससिक कथा में (जिसका आधार शतपथ ब्रह्मण, मत्स्य पुराण है) इतना और जोड़ दिया है कि सारस्वत प्रदेश की जनता भी मनु के विरूद्ध क्रान्ति मचाती है और उसका नेतृत्व आकुलि तथा किलात करते हैं। उनमें घमासान युद्ध होता है और मनु धराशायी हो जाते हैं। इस कथा द्वारा प्रसाद जी ने आधुनिक शासन और शासितों के वर्ग–संघर्ष को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है तथा जनता की विजय दिखाकर जनता को शासकों का नियंता बताया है।

कामायनी की कथा के अन्तिम भाग में प्रसाद जी ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर कथा को एक नया मोड़ दिया है जिससे ऐतिहासिक तत्वों का सर्वथा अभाव हो गया है। इस कथा में तीन बाते मुख्य हैं–ताण्डव नृत्य करते हुए शिव का मनु द्वारा दर्शन, त्रिपुर के रहस्य का ज्ञान और कैलाश शिखर पर पहुँच कर सबको समरसता तथा अखण्ड आनन्द की प्राप्ति। ताण्डव नृत्य का आधार 'लिंग पुराण', 'शिव ताण्डव स्तोत्र' तथा 'शिव महम्नि स्तोत्र' है। त्रिपुर का प्रसंग भी भारतीय धर्म ग्रन्थों में मिलता है। ऋग्वेद में अग्नि को त्रिधातु कहा गया है, शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि असुरों ने प्रजापति की तपस्या कर पृथ्वी पर लोहपुर, अन्तरिक्ष में रजतपुर, द्युलोक में स्वर्णपुर का निर्माण किया तथा देवताओं ने अग्नि की उपासना कर तीनों लोकों को भस्म कर दिया। शैवागमों में त्रिपुर कथा को आध्यात्मिक रूप प्रदान किया गया है। तन्त्रालोक में इच्छा, ज्ञान और क्रिया का त्रिकोण ही त्रिलोक है, जिनके पार्थक्य के कारण उपाधियुक्त संसार बनता है एवं सामरस्य से अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती है। त्रिपुर रहस्य में श्रद्धा को त्रिपुरा–देवी कहा गया है जो त्रिपुरों का एकीकरण करती है। कामायनी में कथा का यह अंश स्पष्ट है कि शैवागमों से लिया गया है यद्यपि त्रिपुर के रंगों की कल्पना वैदिक साहित्य से ली गई है और भावलोक को रागारूण, ज्ञानलोक को श्वेत तथा कर्मलोग को श्याम वर्ण का बताया गया है। कैलाश शैवागमों में वर्णित आनन्दमय कोष का प्रतीक है जहां श्रद्धा द्वारा ही पहुँचा जा सकता है। पर उसका तथा मानसरोवर की शोभा का वर्णन पुराणों के अनुरूप है। निष्कर्ष यह है कि प्रसाद जी ने वैदिक साहित्य, लौकिक साहित्य, तान्त्रिक ग्रन्थों आदि में बिखरी हुई कथा–सामग्री को लेकर अपनी उर्वर कल्पना द्वारा कामायनी की कथा–वस्तु का निर्माण किया है। इतना स्पष्ट है कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कवि को ऐतिहासिक सामग्री की अपेक्षा कल्पना–तत्व का सहारा अधिक लेना पड़ा है।

भारतीय काव्य–शास्त्र कवि को दो प्रकार की मौलिक उद्भावनाएँ करने की अनुमति देता है–विद्यमान का संशोधन एवं अविद्यमान की कल्पना। कामायनी में विद्यमान का संशोधन मुख्यतः दो प्रसंगों में दृष्टिगत होता है। प्रख्यात कथा में मनु और इड़ा को पिता–पुत्री कहा गया है। प्रसाद जी ने नायक की गौरव–रक्षा के लिये इसका संशोधन किया है और इड़ा को उनकी पुत्री न बताकर सारस्वत प्रदेश की रानी कहा है। इस से रूपक के निर्वाह में भी सहायता मिली है। दूसरे सारस्वत प्रदेश में प्रजाजन का विद्रोह मनोवैज्ञानिकता लाने तथा शासक–शासित का संघर्ष दिखाने के लिए किया गया है। गौण संशोधित प्रसंगों में मनु की नाव का हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर मत्स्य के चपेटे से पहुँचना, पाक–यज्ञ करने के बाद मैत्रावरूण यज्ञ करना, दस पुत्रों की जगह मनु के एक पुत्र का होना आदि आते हैं।

नवीन उद्भावनाओं के अन्तर्गत देवों के निर्बाध विलास से जल–प्लावन, मनु और श्रद्धा के प्रथम साक्षात्कार से लेकर उनके प्रणय तक की गाथा आती है। प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य जिससे मनु के हृदय में श्रृंगार भाव–उद्दीप्त होता है, निराश मनु को कर्मण्य बनाने के लिए श्रद्धा का ओजस्वी भाषण, काम का सन्देश श्रद्धा के हृदय मे स्त्रियोचित लज्जा का उदय, श्रद्धा के पशु–प्रेम एवं मातृत्व पर मनु की ईर्ष्या, सारस्वत–प्रदेश में जन–क्रान्ति, यन्त्रवाद और भौतिक उन्नति की विफलता का चित्र, इड़ा तथा कुमार का मिलन, त्रिपुर–दर्शन, कैलाश–यात्रा, आदि भी मौलिक उद्भावनाओं के अन्तर्गत आते हैं। यद्यपि ये घटनाएँ प्रसाद की कल्पना से प्रस्तुत हैं, तथापि वे इतिहास से मेल खाती हैं। प्रसाद ने स्वयं आमुख में कहा है–"यह कल्पना सहज ही की जा सकती है कि इड़ा के साथ ही मनु ने सभ्यता का विकास किया था। श्रद्धा का मानव को इड़ा को सौंप देना भी मनोविज्ञान–सम्मत है, क्योंकि बुद्धि और भावना का समन्वय मानव विकास के लिये अपेक्षित है।"

कामायानी में प्रसाद जी ने जो मौलिक नीवन उद्‌भावनाएँ की हैं, उसके चार कारण हैं। कामायनी की आधारभूत घटनाएं विशृंखलित थीं। इन कथासूत्रों का संयोजन करने के लिए कवि को अनेक उद्‌भावनाएँ करनी पड़ी हैं। स्वयं कवि ने लिखा है, "कामायनी की कथा–शृंखला मिलाने के लिये कहीं–कहीं थोड़ी–बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड़ सका हूँ।" रस–सृष्टि के लिए पूर्वराग, संयोग, विरह आदि सरस प्रसंगों की अवतारणा की गई है। नायक की गौरव–रक्षा के लिये कुछ संशोधन कथा में किये गये हैं जैसे इड़ा को मनु की पुत्री न मानना। अति–प्राकृत तत्त्वों का निराकरण करने और कथा में स्वाभाविकता तथा मनोवैज्ञानिकता की रक्षा तथा फलागम की सिद्धि के लिए भी प्रख्यात कथानक में अनेक परिवर्तन और परिवर्धन करने पड़े हैं। कवि का प्रकृति–प्रेम, सौन्दर्य–प्रेम एवं दार्शनिक सिद्धान्त भी इसके लिये उत्तरदायी हैं।

7.3 सारांश

कामायनीकार का लक्ष्य ऐतिहासिक कथा कहने के साथ–साथ मानव मन का विकास दिखाना और आधुनिक युग को संदेश देना भी था, "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है।" डॉ॰ नगेन्द्र के अनुसार इस परिवर्तन का एक कारण यह भी है कि प्रसाद जी भौतिक जगत के विराट घटना–चक्र को मानव–चेतना के अतल गह्‌वर में होने वाले घटना–चक्र की छाया मात्र दिखाना चाहते हैं। शैव–दर्शन के समरसता सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिये भी उन्होंने कथा में परिर्वतन किये हैं। सारांश यह है कि मानव–मंगल की रक्षा के लिए कवि ने ऐतिहासिक पात्रों का सहारा लेकर अपनी मौलिक कल्पना द्वारा एक अद्‌भुत कृति की सृष्टि की है। डॉ॰ शिवकुमार मिश्र के शब्दों में, "कल्पना का योग होने पर भी कामायनी पूर्ण रूप से ऐतिहासिक है, कारण कि प्रसाद कल्पना के उचित प्रयोग को भली–भाँति जानते थे। उनकी कल्पना ने शुष्क और नीरस इतिहास को अत्यन्त रमणीय और हृदयग्राही बना दिया है।

7.4 कठिन शब्द

1)	जलप्लावन	5)	अवशिष्ट
2)	निर्बाध	6)	विगत
3)	वैवस्वत	7)	द्रुतगति
4)	झंझावत	8)	कर्मण्य

7.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1 कामायनी में अभिव्यक्त इतिहास और कल्पना पर विचार व्यक्त करें।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र2 कामायनी में प्रसाद द्वारा प्रयुक्त नवीन मौलिक उद्‌भावनाओं पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

7.6 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

1) कामायनी : एक अध्ययन – डॉ नगेन्द्र।

2) कामायनी अनुशीलन – रामलाल सिंह।

3) कामायनी, एक पुनर्विचार–मुक्तिबोध।

4) प्रसाद का काव्य – प्रेमशंकर।

5) कामायनी मूल्यांकन और मूल्यांकन – इन्द्रनाथ मदान।

.....

कामायनी में रूपक तत्व

8.0 रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 रूपक शब्द की व्याख्या

8.4 कामायनी में रूपक तत्व

8.5. सारांश

8.6 कठिन–शब्द

8.7 अभ्यासार्थ–प्रश्न

8.8 सन्दर्भग्रन्थ/ पुस्तकें

8.1 **उद्देश्यः** प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

1) रूपक शब्द के अर्थ से परिचित हो सकेंगे।

2) कामायनी में रूपक तत्व से अवगत हो सकेंगे।

3) कामायनी के रूपक तत्व पर किए गए आक्षेपों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना

अनेक आलोचक कामायनी के रूपक तत्व को स्वीकार करते हैं। यह सही भी है। स्वयं 'कामायनी' के कवि प्रसाद ने भी इस मान्यता को स्वीकार करते हुए कामायनी के आमुख में इसकी चर्चा करते हुए कहा है – यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मानव के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है तो भी बड़ा भावमय और श्लाघ्य है, यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है। ..... यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है। इसलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिवृद्धि करें

तो मुझे कोई अपत्ति नहीं है। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है। 'श्रद्धाम् हृद्यमाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु'। (ऋग्वेद 10–251–4) इन्हीं सबके आधार पर कामायनी की कथा सृष्टि हुई है।' प्रसाद जी के इस कथन से कामायनी में भावात्मक अभिव्यक्ति का भी संकेत मिलता है। 'कामायनी' की रचना एवं काव्य कौशल पाठकों को आकर्षित किए बिना नहीं रह सकता। सम्पूर्ण कामायनी में आद्यन्त दो अर्थ प्रवाहित होते नज़र आते हैं। प्रथम में श्रद्धा एवं मनु की कहानी का विकास होता है और दूसरे में मन के भीतर निवास करने वाली मनोवृत्तियों का संकेत मिलता है।

8.3 रूपक शब्द की व्याख्या

कामायनी के रूपक तत्व पर विचार करने के पूर्व हमें रूपक शब्द की व्याख्या कर लेनी चाहिए। भारतीय समीक्षा साहित्य में 'रूपक' शब्द अपने दो अर्थों को लिए हुए सदियों से चला आ रहा है। भारतीय काव्य–शास्त्र के अनुसार 'रूपक' शब्द का वृहद् अर्थ सम्पूर्ण दृश्य काव्य से सम्बन्धित है जिसमें सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। 'रूपक' का एक संकुचित अर्थ भी प्रचलित है जो रूपकालंकार से सम्बन्धित है जिसमें अप्रस्तुत का प्रस्तुत पर अभेद आरोप रहता हैं। इन दोनों से भिन्न रूपक शब्द का आधुनिक युग में तीसरा अर्थ भी लोकप्रियता को प्राप्त हुआ है, जिसे अंग्रेजी के 'एलिगरी' का पर्याय माना जाता है। 'एलिगरी' का विकास कथा–रूपक के साथ होता है जिसमें सम्पूर्ण कथा के दो अर्थ ध्वनित होते हैं प्रथम में तो सम्पूर्ण कहानी की व्याख्या होती है और द्वितीय में गूढ़ अर्थ निहित होता है। कुछ आलोचक हिन्दी में ऐसी रचना को अन्योक्ति नाम से भी पुकारते हैं।

'रूपक' शब्द की व्याख्या जो अंग्रेजी के 'एलिगरी' से लगायी जाती है उससे हमारे साहित्य को विशेष लाभ हुआ है। इसमें जहाँ एक ओर साधारण अर्थ के अतिरिक्त एक अन्य–गूढ़ार्थ रहता है, वहाँ अप्रस्तुत अर्थ का प्रस्तुत अर्थ पर श्लेष, साम्य आदि के आधार पर अभेद आरोप भी रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि रूपक अलंकार में जहाँ प्रायः एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर अभेद आरोप होता है, वहाँ कथा–रूपक में एक कथा का दूसरी पर अभेद आरोप होता है। वहाँ भी एक कथा प्रस्तुत और दूसरी अप्रस्तुत रहती है। प्रस्तुत कथा स्थूल, भौतिक घटनामयी होती है और अप्रस्तुत कथा सूक्ष्म सैद्धान्तिक होती है। यह सैद्धान्तिक कथा दार्शनिक, नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक आदि किसी भी प्रकार की हो सकती है, परन्तु इसका अस्तित्व मूर्त नहीं होता। वह प्रायः प्रस्तुत कथा का अन्य अर्थ ही होता है जो उससे ध्वनित होता है, किसी प्रबन्ध–काव्य की प्रासंगिक कथा की भाँति जुड़ा हुआ नहीं होता।

8.4 कामायनी में रूपक तत्व

अब हमें कामायनी के रूपक तत्व पर विचार करना चाहिए। कामायनी में सर्गों का जो नामकरण किया गया है वह मानसिक वृत्तियों के आधार पर है जिससे प्रसाद के मनोवैज्ञानिक लक्ष्य का पता चलता है। कामायनी का प्रारम्भ महाकवि ने प्रकृति के भयंकर वातावरण से किया है, जिसमें केवल अकेला व्यक्ति किसी प्रकार मत्स्य की सहायता से हिमालय की ऊँची चोटी पर पहुँचता है और जल का प्रवाह सविस्मय देखने लगता हैं–

हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह।

एक पुरुष भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह।
नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन।
एक तत्व की ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन।

ऐसी स्थिति में चिन्ता के अतिरिक्त मन की किसी अन्य भावना का विकास असम्भव है। प्रसाद का कवि कामायनी के प्रथम सर्ग को 'चिन्ता' के नाम से ही सम्बोधित करता है। प्रलय पश्चात् मनु को नवीन सृष्टि की संरचना करनी है। उनके इस कार्य में महान शक्ति एवं साहस की आवश्यकता है। उन्हें इसी चिन्तनशील समय में भूतकालीन ऐश्वर्य एवं भविष्य के कार्य आदि पर विचार एवं मनन करने का मौका मिलता है। चिन्ता मनुष्य के लिए यदि कुछ कारणों से बाधक या शोषक है, वहीं पर चिन्तनशील रहने के लिए इसका होना भी आवश्यक माना गया है। आत्म चेतना या चिंता आदि लक्षणों के कारण ही मनुष्य प्राणी जगत् से भिन्न और श्रेष्ठ माना गया है। इसी चिन्तनशील या चिन्ताकुल दशा के पश्चात् मनुष्य के जीवन में मोड़ भी आता है, जो कामायनी के मनु के ऊपर सत्य प्रतीत होता है। जहाँ कामायनी का मनु चिन्ता को, उसकी निष्ठुरता पर कोसता है, वहीं पर चिन्ता की अग्रिम सीढ़ी पर उसे आशा का आभास होता है और कामायनी के दूसरे सर्ग का नाम आशा रखा गया है। आशा विकासोन्मुख प्रवृत्ति है जिससे मनुष्य का जीवन सदैव प्रगति पथ पर कार्यरत रहता है। आशा के द्वारा जीवन जीने की प्रेरणा प्राप्त होती है। यदि आशा का संचार मनुष्य के हृदय में न होता हो तो निश्चय ही मनुष्य की सभी मानसिक वृत्तियों के कार्यकलाप में काफी रुकावट हो जायेगी। आशा ही मानसिक वृत्तियों की प्रेरक है, यद्यपि जीवन–विकास का आधार श्रद्धा है, परन्तु अपनी प्रेरणात्मक प्रवृत्ति के कारण आशा का अपना अलग महत्व है। श्रद्धा मनुष्य जीवन के लिए मूल तत्व स्वरूप है। कामायनीकार ने श्रद्धा को कामायनी में नारी के रूप में उपस्थित किया है। इसका आधार श्रद्धा की व्यापकता एवं जीवन के अरण्य में अनिवार्यता है। श्रद्धा मनु को कर्म के क्षेत्र में पदार्पण करने को बाध्य करती है, यद्यपि मनु जीवन से हार मान चुके हैं। निवृत्ति पथ से प्रवृत्ति मार्ग की ओर बढ़ने के लिए कामायनी की श्रद्धा मनु को शैवागम दर्शन की शिक्षा देती है। मन का कातर स्वभाव किसी भी अटल सत्य को जल्दी स्वीकार नहीं करना चाहता। अंततः श्रद्धा के निम्न सिद्धान्त के सामने मनु का हठीला व्यक्तित्व हार मान ही जाता है–

कर रही लीलामय आनन्द
महा चिति सजग हुयी सी व्यक्त।
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त।।
काम मंगल से मण्डित श्रेय
सर्ग इच्छा का है परिणाम।
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल,
बनाते हो असफल भवधाम।।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप
जगत् की ज्वालाओं का मूल।
ईश का वह रहस्य वरदान
कभी मत इसको जाओ भूल।।

अन्ततोगत्वा निराश्रित मनु के हृदय में पुनः प्रवृत्ति मार्ग का विकास हो जाता है और उसकी मानसिक वृत्ति जीवन की समस्याओं से जूझने को तैयार हो जाती है। श्रद्धा के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करने के लिए प्रसाद को कामायनी के चतुर्थ सर्ग का नामकरण 'काम' करना पड़ा। काम के द्वारा ही श्रद्धा का विकास माना जाता है, अस्तु इसे कुछ लोग श्रद्धा का जनक भी मानते हैं। प्रसाद जी के अनुसार सृष्टि विकास के लिए काम सर्वश्रेष्ठ है। भारतीय वैदिक साहित्य से लेकर अन्य दर्शनों तक काम अपने इसी रूप में चित्रित है। कामायनी का काम अपनी दुहिता को मनु के लिए इस दृष्टि से समर्पित करता है कि इसके साथ रहकर तुम भावी सृष्टि की संरचना कर सकते हो। काम ने अपने दार्शनिक पक्ष का समर्थन करते हुए बताया है–

यह नीड़ मनोहर कृतियों का,
यह विश्व कर्म–रंगस्थल है।
है परम्परा लग रही यहाँ,
ठहरा जिसमें जितना बल है।।

वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष और निर्वेद तक प्रसाद जीवन–रहस्य के उद्घाटन में उलझे रह जाते हैं। लज्जा नामक वृत्ति नारी समाज को संयम, त्याग एवं समर्पण की भावना की ओर आकर्षित करती है। श्रद्धा के वास्तविक रूप को पहचानने में मनु को काफी समय लग जाता है। नारी समाज अपने आपको जब समर्पित कर देता है तो स्वतः उसका अस्तित्व अंधकार में पड़ जाता है। परन्तु जब उसे अपने स्व का पता चलता है तब तक उसका सर्वस्व लुट चुका होता हैं। 'वासना' के उपरान्त मनु में कर्म की प्रवृत्ति बढ़ती है। यहाँ कर्म से प्रसाद जी का अभिप्राय याज्ञिक या हिंसात्मक कर्म से है। वासना के उदय के पश्चात मानव की अतृप्ति उसे अबाध कर्म की ओर प्रेरित करती है। व्यक्ति सब छोड़कर उसी में लग जाता है। कर्म के अबाध प्रवाह में विघ्न डालने वाली प्रवृत्ति वासना जन्य अतृप्ति ही है। किलात और आकुलि नामक असुर पुरोहित मनु को हिंसात्मक कर्मों में प्रवृत्त करते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अतृप्ति ही हिंसात्मक कार्यों में परिणत होती है। कर्म का ही अतिवादी रूप है सत्ता को अधिकृत करने की चेष्टा, आत्मविस्तार या अपने को अधिकारी बनाने का उद्योग। ज्यों–ज्यों मनु में हिंसात्मक कर्मों की प्रवृत्ति बढ़ती है, वह अनेक मानसिक दुर्वृत्तियों से आक्रान्त होते हैं। उनकी अन्तिम दुर्वृत्ति ईर्ष्या है। ईर्ष्या में दूसरे की सुख–सुविधा के प्रति अनुदार संकीर्णता और विरोध का भाव रहता है। मनुष्य अहं केन्द्रित हो जाता है। यह कर्म का संकीर्णतक स्वरूप है। ईर्ष्या की उत्तेजना में मनु घर, पत्नी सब कुछ छोड़कर अज्ञात दिशा में निकल पड़ते हैं। वहां से मनु बुद्धिवादी बनकर सारस्वत प्रदेश में पहुँचते हैं और इड़ा से मिलते हैं। हिंसाप्रिय और ईर्ष्यालु मनुष्य बुद्धिवादी बन जाता है। आज का वैज्ञानिक भी अपने को बुद्धिवादी ही कहता है। सारस्वत प्रदेश के नव निर्माण का जो चित्रण प्रसाद ने किया (कामायनी दशम सर्ग) वह आज के विज्ञानवादी संसार से मिलता–जुलता है। प्रसाद की दृष्टि में यह बुद्धिवाद, विज्ञानवाद या भौतिकवाद मनुष्य के स्वस्थ और स्वाभाविक विकास में बाधक है।

बुद्धिवाद की दुर्वृत्तियों में लीन हो जाने पर मनु अपने आप को भूल जाते हैं एवं भय रहित होकर बुद्धि के कौशल का विकास करते हैं। परन्तु उनका बुद्धिवादी दृष्टिकोण ही उन्हें पतन के कगार पर आरूढ़ कर देता है। मनोवैज्ञानिकों का भी विचार है कि दुर्वृत्तियों की अन्तिम परिणति बुद्धिवादी है। बुद्धि पक्ष सदैव स्वहित चिन्तन में तल्लीन रहता हैं। जहाँ पर स्व का विकास होता है वहीं पर अशान्ति है। इसलिए बुद्धिवाद के प्रभाव में पड़ने से शान्ति समाप्त हो जाती है। मनुष्य जीवन में सन्तोष की आवश्यकता नहीं। उसे तो शान्ति की आवश्यकता है। शान्ति हृदय, बुद्धि एवं मन के समाहार पर ही आधारित है। कामायनी का आनन्द सर्ग इसी समाहार की शान्ति का विवेचन करता है। "इस प्रकार हम देखते हैं 'कामायनी' मनु और श्रद्धा की कथा तो है ही मनुष्य के क्रियात्मक, बौद्धिक और भावात्मक विकास से सामंजस्य स्थापित करने का अपूर्व काव्यात्मक प्रयास भी है। यही नहीं, यदि हम और गहरे पैठें, तो मानव–प्रकृति के शाश्वत स्वरूप की झलक भी इसमें मिलेगी। आध्यात्मिक और व्यावहारिक तथ्यों के बीच संतुलन स्थापित करने की सर्वप्रथम चेष्टा इस काव्य में की गयी है। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए मानवीय वस्तुस्थिति से परिचय रखने वाली जिस मर्मभेदिनी प्रकृति की आवश्यकता है, वह प्रसाद जी को प्राप्त थी। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से शरीर, मन और आत्मा कर्म, भावना और बुद्धि, क्षर, अक्षर और उत्तम तत्त्वों को सुसंगठित कर दिया हैं। यही नहीं, उन्होंने इन तीनों के भेद को मिटाकर इन्हें पर्यायवाची भी बना दिया है। जो मनु और कामायनी हैं, वही आधुनिक पुरुष एवं नारी भी हैं। यही नहीं, शाश्वत पुरुषत्व और नारीत्व भी वही हैं। एक की साधना सब की साधना बन जाती है। मनोविज्ञान में काव्य और काव्य में मनोविज्ञान यहाँ एक साथ दिखाई देते हैं। मानस (मन) का ऐसा विश्लेषण और काव्यात्मक निरूपण हिन्दी में शायद शताब्दियों के बाद हुआ है।"

कामायनी के शीर्षक की मनोवैज्ञानिकता समझने के पश्चात् अब हमें कामायनी के पात्रों पर विचार कर लेना चाहिए। कामायनी के प्रधान पात्रों में मनु, श्रद्धा और इड़ा हैं। इनके अतिरिक्त तीन गौण पात्र भी हैं– मनु का पुत्र मानव, तथा असुर पुरोहित किलात और आकुलि। इन पात्रों के अतिरिक्त काम और लज्जा नामक दो अशरीरी पात्र हैं जो अपने सांकेतिक अर्थ का प्रतिपादन करते हैं। 'कामायनी' में मनु का प्रतीक अर्थ मन से सम्बन्धित है। किन्तु दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक अर्थ में वे मनोमय कोश में स्थित जीव के प्रतीक हैं। मन की रागात्मक वृति अंहकार है जो मनन करने के परिणामस्वरूप प्राप्त होती है। कामायनी में मन अर्थात् चेतना (Consciousness) के प्रतीक रूप में मनु का चित्रण किया गया है–

मैं हूँ, यह वरदान सदृश क्यों।
लगा गूँजने कानों में।
मैं भी कहने लगा, मैं रहूँ,
शाश्वत नभ के गानों में।

× × ×

यह जलन नहीं सह सकता मैं,
चाहिए मुझे मेरा ममत्व,
इस पंचभूत की रचना में,
मैं रमण करूँ बन एक तत्व।

× × ×

यह जीवन का वरदान मुझे,
दे दो रानी अपना दुलार।
केवल मेरी ही चिन्ता का,
तब चित्त वहन कर सके भार।

कामायनी के दूसरे प्रमुख एवं प्रभावशाली पात्रों में श्रद्धा का विशेष महत्व है। श्रद्धा का उल्लेख हमारे वेदों से लेकर उपनिषदों तक प्राप्त होता है। इसकी व्यापकता एवं नारीसुलभ गुणों की व्याख्या में इन शास्त्रों के द्वारा विशेष बल मिलता है। ऋग्वेद में श्रद्धा एवं मनु दोनों का नाम ऋषियों की पंक्तियों में आबद्ध है। कामगोत्र की बालिका होने के कारण श्रद्धा को कामायनी से भी सम्बोधित किया गया है। छान्दोग्योपनिषद् तथा त्रिपुर रहस्य में श्रद्धा की भूमिका भावमूलक अर्थ में की गई है। प्रसाद जी ने श्रद्धा के इसी रूप को स्वीकार किया है। श्रद्धा को हृदय का प्रतीक, कामायनीकार ने माना है–उस के रूप का चित्रण करते हुए प्रसाद ने लिखा है–

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार,
एक लम्बी काया उन्मुक्त।
मधु–पवन–क्रीड़ित ज्यों शिशु शाल,
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।

श्रद्धा नारी सुलभ सभी उदात्त गुणों एंव भावनाओं की प्रतिमूर्ति है। वह गन्धर्वों के देश से विचरण करती हुई मनु के प्रान्तर भाग में आती है। उसके लावण्य में जो आकर्षण है वही उसके व्यक्तित्व में भी समाहित हुआ है, उसमें करुणा, दया, ममता के साथ हृदय के कोमल तत्वों का समाहार है। श्रद्धा के इन्हीं गुणों के प्रति मुग्ध होकर प्रबल समीक्षक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उसे 'विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति' कहा है। परन्तु विश्वास एवं राग–वृत्ति का सम्बन्ध भी हृदय से होने के कारण वह हृदय की ही प्रतीक सिद्ध होती है। अगाध विश्वास एवं ममता से युक्त होने के कारण उसका संसर्ग शान्तिदायक है। नारी सुलभ प्रेरणा की रानी होने से श्रद्धा अपने आत्मबल द्वारा संसृति के झंझावातों से दुःखी मनु को कर्म के पथ पर लगा देती है।

श्रद्धा का आविर्भाव इन्हीं उद्देश्यों को लेकर हुआ है जो प्रेम के विराट सौन्दर्य को सर्वसाधरण जनों के हृदय तक पहुँचा सके–

यह लीला जिसकी विकास चली,
वह मूल शक्ति थी प्रेम कला।
उसका संदेश सुनाने को,
संसृति में आई वह अमला।

श्रद्धा के भावुक चरित्रांकन के पश्चात् कामायनी के प्रमुख पात्रों में इड़ा का विशिष्ट स्थान है। लौकिक संस्कृत में इड़ा के पर्यायवाची शब्दों में पृथ्वी, वाणी, बुद्धि का प्रयोग हुआ है। प्रसाद जी ने कामायनी में इड़ा को बुद्धि के अर्थ

में स्वीकार किया है जिससे कामायनी में रूपक तत्व पर कोई आँच नहीं आने पाई है। प्रसाद ने स्वयं इड़ा के प्रतीकात्मक व्यक्तित्व का चित्रांकन करते हुए लिखा है–

बिखरी अलकें ज्यों तर्क–जाल,
वह विश्व मुकट–सा उज्जवलतम शशिखण्ड–सदृश था स्पष्ट भाल।
दो पद्म–पलाश–चषक–से दृग देते अनुराग–विराग ढाल।
गुंजरित मधुप से मुकुल–सदृश वह आनन जिसमें भरा गान,
वक्षस्थल पर एकत्र घरे संसृति के सब विज्ञान–ज्ञान।
था एक हाथ में कर्म कलश–वसुधा–जीवन–रस सार लिए,
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलम्ब दिये।
त्रिबली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक–वसन लिपटा अराल–
चरणों में थी गति भरी ताल।

ऋग्वेद में इड़ा को मनु की पथ–प्रदर्शिका के रूप में और मनुष्य जाति पर शासन करने वाली के रूप में स्वीकार किया गया है–'इड़ामकृण्वन्मनुषस्य शासनीम्।' परन्तु कामायनी में वह मनु का पथ–प्रदर्शन करती है। इड़ा हृदय की उदात्त वृत्तियों से वंचित व्यवसायात्मिक बुद्धि है। इड़ा के चरित्र में वैज्ञानिक युग की मान्यताओं का विशेष विकास हुआ है। घोर बुद्धिवाद के दुष्परिणाम का फल मानव संस्कृति एवं समाज दोनों के लिए अहितकर है। जब मनु का इड़ा से समागम होता है तो मनु बुद्धिवाद के प्रबल समर्थक हो जाते हैं और इड़ा के संकेतों पर नाचने लगते हैं। जहाँ मनु श्रद्धा के सम्पर्क में समरसता के लिए चिन्तित रहते हैं वहीं इड़ा के संसर्ग से मनु में स्वार्थलिप्सा और एकाधिकार की भावना और अधिक विस्तार को प्राप्त करती है, जिसके कारण संघर्ष का बीजारोपण होता है। इड़ा वर्ग विभाजन, संघर्ष आदि तत्वों पर विश्वास करती है जो वैज्ञानिक युग की मान्यताओं का सम्बल है। इन प्रमुख पात्रों की मनोवैज्ञानिकता समझने के पश्चात् अब हमें कामायनी के गौणपात्रों पर भी विचार कर लेना चाहिए। इन गौणपात्रों में मनु–पुत्र मानव के चरित्र का विकास कामायनी में अधिक नहीं हो पाया है। परन्तु वास्तविकता के धरातल पर मानवता के विकास का प्रचार एवं प्रसार वही करता है। मनु के मननशील व्यक्तित्व, श्रद्धा की उदात्त–भावना तथा इड़ा के बुद्धिवादी तत्वों की प्रेरणा से उसके चरित्र में जो विकास हो पाया है उसका महत्व थोड़ा नहीं है। गौणपात्रों में आकुलि किलात आसुरी वृत्तियों के प्रतीकार्थ में प्रयुक्त हैं। "मनु द्वारा हिंसा यज्ञ की ओर आकृष्ट होते ही ये दोनों (आसुरी वृत्तियाँ) उसके सामने उपस्थित हो जाती हैं जिसकी दुष्प्रेरणाओं के परिणमस्वरूप मनु में तामसी प्रवृत्तियों का बाहुल्य हो जाता है। अन्त में जब मनु इड़ा पर अपना अधिकार करना चाहते हैं, तो ये भी मनु को छोड़कर विद्रोही प्रजा के साथ जाकर मिल जाते हैं और विद्रोहियों के नेता बनकर सामने आते हैं। इसका सांकेतिक अर्थ यह है कि आसुरी वृत्तियाँ पहले तो मन को नाना प्रकार के दुष्कर्म करने के लिए प्रेरित करती हैं और जब उसे अपने इन कर्मों के फलस्वरूप कष्ट भोगना पड़ता है तो ये आसुरी वृत्तियाँ उलटे उसके कष्ट में और अधिक वृद्धि करती हैं।" गौणपात्रों के अतिरिक्त श्रद्धा का पशु, देव, वृषभ और सोमलता आदि अपने सांकेतिक अर्थ के लिए निश्चित स्थान रखते हैं। इनका लक्ष्यार्थ इन्द्रियों से है। श्रद्धा का पशु भी अपने प्रतीक अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। तभी तो उसकी जाति, वर्ण

आदि के विषय में कोई उल्लेख नहीं हुआ है। इसी श्रद्धा के पशु का वध असुर पुरोहितों द्वारा कराया गया है। इस पर गान्धीवादी अहिंसा का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगत होता है–

एक माया। आ रहा था पशु अतिथि के साथ
हो रहा था मोह करुणा से सजीव सनाथ।

भारतीय दर्शन शास्त्र वृषभ को अनादिकाल से ही धर्म का प्रतीक मानता है। इसके ऐतिहासिक आधार भी अनेकशः प्राप्त होते हैं। प्रसाद जी ने भारतीय दर्शन के इस तत्व को अक्षरशः स्वीकार किया है। इस प्रकार कामायनी की कतिपय पौराणिक एवं ऐतिहासिक घटनाएँ भी अपना सांकेतिक अर्थ रखती हैं। कामायनी की प्रमुख घटना 'जलप्लावन' भारत के सांस्कृतिक इतिहास के पृष्ठों के अतिरिक्त विश्वसाहित्य एवं संस्कृति से भी सम्बधित है। प्रत्येक देश का साहित्य इसे आदिकाल से ही अपने आप में सँजोये हुए है। यद्यपि इसके कथानक की मौलिकता में काफी अन्तर है, परन्तु कथाओं का साम्य भी कम नहीं हैं। इस घटना का उल्लेख भारतीय दर्शन प्रतीकार्थ में भी करते हैं। जब मानव–मन काम–वासना आदि मनोभावों से अप्लावित होकर इन्द्रियों के सुखों में ही तल्लीन हो जाता है अर्थात् सीमा की मर्यादा तोड़कर निम्नतम अन्नमय कोश में ही अत्यधिक रम जाता है तब उसकी चेतना पूर्णतः माया से आच्छादित हो जाती है। इसी प्रकार त्रिलोक की प्रेरणा कवि को अति प्रसिद्ध आख्यान त्रिपुरदाह से प्राप्त हुई है। इस कथा का प्रतीक भाव–लोक, कर्म–लोक और ज्ञान–लोक से है। इन्हीं तीनों लोकों का सम्बन्ध मनुष्य की तीनों वृत्तियों (भाववृत्ति, कर्म–वृत्ति और ज्ञान वृत्ति) से है। तीनों वृत्तियों के समन्वय से ही वास्तविक एव असीम अखण्ड आनन्द की प्राप्ति सम्भव है। इन तीनों वृत्तियों के विलग रहने से मन में शान्ति असम्भव है और चिन्ता का क्रमशः विकास होता रहता है–

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सकें,
यह विडम्बना है जीवन की।

जब इन तीनों वृत्तियों (भाव, कर्म और ज्ञान) का समन्वय हो जाता है तो हृदय की प्रतीक, विश्वासमयी रागत्मिका–वृत्ति श्रद्धा का विकास होता है और समरसता की अवस्था आ जाती है–

स्वप्न, स्वाप, जागरण भरस हो,
इच्छा क्रिया, ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर निनाद में,
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।

सारस्वत नगर का भी कामायनी के लिए महत्त्व है। यह प्राणम्य कोश का प्रतीक है। सारस्वत प्रदेश के निवासी जो मनु के प्रबल सहयोगी होते हुए भी समय पर मनु के विरुद्ध युद्ध अभियान तक कर देते हैं। वे मन की सहगामिनी

अन्य इन्द्रियों के प्रतीक हैं। इसी प्रकार कैलाश पर्वत भी आनन्दमय कोश का रूपक है जहाँ जीवन के झंझावात से क्षुब्ध मनु को शान्ति प्राप्त होती है। कामायनी का मानस शब्द जिसकी स्थिति कैलाश पर्वत पर बताई गई है, वह मानसरोवर के लिए प्रयुक्त हुआ है। शतपथ में इसी मानस या मानसरोवर को 'मानोरवसर्पण' कहा गया है। कामायनी में ये समरसता की अवस्था के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हैं। इस प्रकार कामायनी के पात्रों एवं घटनाओं के प्रतीकों को समझने के पश्चात् अब हमें समझना है कि कामायनीकार इसका निर्वाह आद्यन्त कर पाया है या नहीं। कामायनी का आरम्भ भयंकर प्रलयोपरान्त होता है। देवताओं के सम्पूर्ण वैभव के अस्तित्व का अन्त हो जाता है और उनके प्रतिनिधि मनु किसी प्रकार आत्मरक्षा कर हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर जा बैठते हैं। चिन्ता की सरिता में नीरव अवगाहन करने के पश्चात् मनु को श्रद्धा का सान्निध्य प्राप्त होता है ओर उसकी प्रेरणा से अपने अशांत जीवन में शान्ति की कुछ छाया प्राप्त करते हैं। श्रद्धा के प्रभाव में आने से उनके मन की दुर्वृत्तियों का परिष्कार होता है। परन्तु जब उनमें वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष आदि वृत्तियों का विकास होता है तो श्रद्धा तत्व का क्रमशः लोप होने लगता है और मनु उसे अकेले छोड़कर सारस्वत नगर में पहुँच जाते हैं जहाँ पर उनका परिचय इड़ा से होता है। इड़ा के निर्देशन में रहकर मनु अपनी तर्कात्मक बुद्धि से कार्य करते हैं। स्व की भावना का जब मनु में विकास होता है तो इड़ा को वशीभूत–करना चाहते हैं। परन्तु वहां की प्रजा को यह अच्छा नहीं लगता है। वह विद्रोह कर देती है जिसमें मनु की हार होती है। इसी स्थिति में उनमें निर्वेद का संचार होता है और पुनः कामायनी की इस कथा के साथ मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक कथा का भी विकास होता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में आनन्दमय इन पाँच कोशों की कल्पना की गई है। अन्नमय कोश स्थित जीवन अनेक प्रेरणाओं एवं प्रयास के माध्यम से उन्नति करते हुए आनन्दमय कोश तक पहुँचता है। इसी अप्रस्तुत कथा का विकास कामायनी में हुआ है। अन्नमय कोश की स्थिति नीचे बताई गई है। इसी में जीव का निवास भी है जो अनेक कारणों से अत्यन्त क्षुब्ध रहता है। उनकी इस स्थिति का मूल कारण उसका अहंकार है। अहं की स्थिति में मनुष्य की चेतना शक्ति का प्रायः लोप हो जाता है। परन्तु जब उसका सम्बन्ध किसी प्रकार हृदय की विश्वासमयी रागात्मिक–वृत्ति की श्रद्धा से होता है तब उसके अहं का क्रमशः लोप होने लगता है। ऐसी स्थिति में वह स्व की सीमा से परे होकर पर के विषय में सोचने–समझने लगता है। इस प्रकार वह अपनी चेतन अवस्था को प्राप्त कर लेता है। चेतन जीव की दो शक्तियाँ मानी गई हैं–हृदय और बुद्धि। हृदय–तत्व उसे कर्म प्रेरणा द्वारा क्रमशः उन्नति के पथ पर बढ़ाता रहता है। परन्तु ऐसी स्थिति में सोमलता आदि अनेक भोग एवं विलास के तत्वों की ओर आकर्षित हो जाने से जीव आसुरी वृत्तियों के प्रभाव में आ जाता है और वासना, हिंसा आदि कार्यों के करने में आनन्दानुभूति करने लगता है। श्रद्धा अपनी महत् प्रेरणा के द्वारा जीव को इस विकार पथ से दूर करने का प्रयत्न करती है, अस्तु जीवन श्रद्धा के वचन–विन्यास से क्षुब्ध हो जाता है और क्रमशः ईर्ष्या के पंथ का राही बनने लगता है–

यह जीवन का वरदान, मुझे
दे दो रानी अपना दुलार।
केवल मेरी ही चिन्ता का,
तब चित्त वहन कर रहे भार।

ईर्ष्या भावना के विकास से मनुष्य (जीवन) अपने अहं की तुष्टि के लिए श्रद्धा का परित्याग भी कर देता

है और नीचे प्राणम्य कोश में पहुँचकर घोर बुद्धिवाद का समर्थक हो जाता है। बुद्धि उसे भौतिक जीवन के उपादानों की ओर आकर्षित करती है–

जो बुद्धि कहे उसको न मानकर,
फिर किसकी नर शरण जाय ?
जितने विचार संस्कार रहे,
उनका न दूसरा है उपाय।।
यह प्रकृति परम रमणीय अखिल,
ऐश्वर्य–भरी शोधक–विहीन।
तुम उसका पटल खोलने में,
परिकर कसकर बन कर्मलीन।।
सबका नियमन शासन करते बस,
बढ़ा चलो अपनी क्षमता।
तुम ही इसके निर्णायक हो,
हो कहीं विषमता या समता।।

बुद्धि का प्रभाव अशान्तिमय होता है। बुद्धि से सदैव वैमनस्य आदि भावनाओं का विकास होता रहता है जो मनुष्य को दुःख देती है, सुख नहीं। मन के अहंकार का विकास बुद्धि से ही प्रभावित होता है। अहंकार की स्थिति में मनुष्य की चेतना शक्ति पूर्णतया कार्य नहीं कर सकती है। अस्तु इसे नाना प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है। अहं की भावना ही बुद्धि को आक्रान्त करना चाहती है जिससे स्वयं अहं का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। श्रद्धा से सम्बन्ध ऐसी स्थिति में ही हो जाने से उसकी रागात्मिका वृत्ति का संचार होता है और उसे जीवन की तीनों वृत्तियों का विज्ञापन प्राप्त हो जाता है। भाव–वृत्ति, कर्म–वृत्ति और ज्ञान–वृत्ति में सामंजस्य का अभाव ही उसके पराभाव का मूल कारण है। श्रद्धा के प्रयत्न से जब इन तीनों में सामंजस्य होता है तब मन समरसता की स्थिति को प्राप्त होता है।

प्रसाद जी ने अपने युग से प्रभावित होकर अपने समय की समसामयिक विभीषिकाओं के समाधान की ओर भी संकेत किया है। मनु की विडम्बना वास्तव में आज के मानव की विडम्बना है, जिसका कारण यह है कि आज हमारी भाव–वृत्ति ज्ञान–वृत्ति (दर्शन–विज्ञान) और कर्म–वृत्ति (राजनीति) तीनों पृथक्–पृथक् हैं उनमें सामंजस्य नहीं है–

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न हैं
इच्छा क्यों पूरी हो मन की

इस विडम्बना का अन्त श्रद्धा अर्थात् गाँधी जी के अहिंसा तथा पाश्चात्य दर्शन के मानवतावाद द्वारा ही हो सकता है। मानव–भावना द्वारा ही संस्कृति, विज्ञान और राजनीति में सामंजस्य स्थापित हो सकता है, पूंजीवाद और विज्ञान से पीड़ित समाज की विडम्बनाओं का समाधान हो सकता है। अतः प्रसाद जी का यह संदेश युग के अनुरूप ही है।

कुछ विद्वानों ने कामायनी के रूपक–तत्त्व पर आक्षेप किया है। वस्तुतः इन आक्षेपों का कारण यह है कि पहले तो समीक्षकों ने स्वतः ही 'कामायनी' को रूपक–काव्य (Allegory) मान लिया है और फिर जब उसमें जगह–जगह दोष एवं असंगतियाँ दिखी हैं, तो उन्होंने उसके लिए कवि को दोषी ठहराया है। अपने दोष को दूसरे के मत्थे मढ़ना कहाँ तक न्यायसंगत है ? लेखक ने कहीं यह नहीं कहा कि वह रूपक–काव्य लिखने जा रहा है, या उसने रूपक–काव्य लिखा है, वह तो बार–बार बल दे रहा है कि उसने ऐतिहासिक काव्य लिखा है। कामायनी का काव्य–विन्यास ऐतिहासिक धरातल पर ही हुआ है। हां, इसमें रूपक की संभावना अवश्य है और वह भी इसलिए कि आख्यान अत्यन्त प्राचीन है जिसके कारण उसमें पहले से ही रूपक खप चुका है। सारांश यह है कि कामायनी की कथा को कवि ने तो इतिहास की भूमि पर ही विन्यस्त किया है, पर उसमें रूपकात्मकता भी कुछ अंश तक आ गयी है वह सम्पूर्णतः रूपक–काव्य है ही नहीं। डॉ॰ नगेन्द्र का कथन है कि कामायनी में प्रयुक्त मनु और मानव दोनों मन के प्रतीक हैं, "पिता पुत्र में लगभग एक ही प्रतीकार्थ की पुनरावृत्ति हो जाती है।" अतः कामायनी का एक पात्र अनावश्यक है। उनका दूसरा आक्षेप यह है कि सारस्वत नगरवासियों के साथ इड़ा और कुमार का चिदानन्दलीन मनु के पास सोमलता मण्डित वृषभ का बलिदान करने के लिये जाना भी अप्रस्तुतार्थ में एक थिगली–सा लगता है। इन आक्षेपों के उत्तर में हमारा कथन यह है कि मानव के दो लक्ष्य हैं–निःश्रेयस की प्राप्ति और अभ्युदय की प्राप्ति। इनमें से एक का अभाव अपूर्णता का द्योतक है। कामायनी में मनु यदि निःश्रेयस की प्राप्ति करते हैं, तो कुमार अभ्युदय की। श्रद्धा–मनु का मार्ग वैयक्तिक साधना मार्ग की ओर संकेत करता हैं, तो इड़ा–कुमार का मार्ग निष्काम कर्म–मार्ग की ओर और ये दोनों मार्ग अन्ततोगत्वा एक में मिलकर आनन्द की भूमि पर अवस्थित होते हैं। अतः इन दोनों पात्रों का होना आवश्यक नहीं है। जहाँ तक इस प्रसंग के थिगली जैसा लगने का सम्बन्ध है स्वयं डॉ॰ नगेन्द्र ने कहा है "प्रस्तुत कथा को थोड़ा सा स्वतन्त्र अवकाश तो मिलना ही चाहिए उसे पूरी तरह अप्रस्तुतार्थ से जकड़ देना ठीक नहीं।" वस्तुतः उनका यह कथन इस बात की स्पष्ट स्वीकारोक्ति है कि कामायनी पूर्णतः रूपक–काव्य नहीं। उसमें अनेक स्थल ऐसे हैं जिनका अप्रस्तुतार्थ नहीं लग सकता।

कामायनी के रूपक–तत्व में शुक्ल जी ने भी दो गम्भीर तात्विक असंगतियों की ओर संकेत किया है। उनका पहला आक्षेप यह है कि जब इड़ा की प्ररेणा से ही मनु कर्मलीन होते हैं, अर्थात् बुद्धि द्वारा ही मनुष्य कर्म में प्रवृत्त होता है, तो फिर ज्ञान–लोक और कर्म–लोक अलग–अलग क्यों माना गया है। उनका यह आक्षेप असंगत है, क्योंकि मनोविज्ञान और दर्शन में अनन्त काल से ही इच्छा, क्रिया और ज्ञान का भेद किया गया है और भारतीय साधना–पद्धति मे भी भक्ति, ज्ञान और क्रिया को अलग–अलग निरूपित किया गया है। यह ठीक है कि कर्म के पीछे बुद्धि की प्रेरणा होती है, परन्तु तात्विक दृष्टि से इन दोनों में भेद है ही।

शुक्ल जी का दूसरा आक्षेप है कि श्रद्धा की स्थिति शुद्ध–भाव की स्थिति है, अतः उसकी स्थिति भाव–लोक से ही नहीं, भाव, ज्ञान, कर्म तीनों से परे कैसे हो सकती है। भाव से भिन्न उसका अस्तित्व समझ में नहीं आता। परन्तु प्रसाद जी ने कामायनी की कथा का मूल आधार श्रद्धा को बनाया है। श्रद्धा का अर्थ है आस्तिकता, लोक–जीवन की रसानुभूति, आत्मा का विमल प्रकाश जिसके द्वारा जीवन का संचालन होता है।

प्रसाद जी ने उसे इसी रूप में ग्रहण किया है। सारांश यह है कि कामायनी की श्रद्धा कोरी भावुकता नहीं है, वह तो जीवन की प्रेरणा की प्रतीक है जबकि भावलोक कोरी, भावुकता, रागवृत्ति (Libido) या इच्छा की रंगीन क्रीड़ाओं का प्रतीक है, वहाँ श्रद्धा जीवन के अस्तित्त्व में आस्था का, यूँ कहिए कि विश्वासयुक्त जीवनेच्छा का प्रतीक है। कामायनी की कथा का उद्देश्य है इच्छा, क्रिया और ज्ञान का सामंजस्य और इसके अनन्तर आनन्द की प्राप्ति। महाकाव्य में उद्देश्य की प्राप्ति मुख्य पात्र द्वारा की जाती है। कामायनी की मुख्य पात्र श्रद्धा है। सारांश यह है कि यद्यपि रूपक–काव्य लिखना कामायनीकार का मुख्य उद्देश्य न था, तो भी रुपक के कारण कामायनी का मूल्य बढ़ा है।

कामायनी के रूपक–तत्व पर डा॰ द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने भी आक्षेप किया है। उनका पहला आक्षेप यह है कि रूपक–काव्य के पात्र काल्पनिक होते हैं, जबकि कामायनी के पात्र ऐतिहासिक हैं।

उनका दूसरा आक्षेप यह है कि कामायनी का चित्रण काल्पनिक जगत् का न हो कर ठोस यथार्थ पर आधारित है।

उनका तीसरा आक्षेप है कि कामायनी में मनोमय कोश और विज्ञानमय कोश के प्रतीक नहीं है, जिसके फलस्वरूप इसके रूपक में छिद्र आ गये हैं। लेकिन उनका यह आक्षेप भी अत्यन्त दुर्बल है। हिमगिरि यदि मनोमय कोश का प्रतीक है, तो वह स्थल जहाँ पहुँचकर मनु की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाएँ नष्ट हो जाती हैं, विज्ञानमय कोश का प्रतीक है–

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो, इच्छा, क्रिया ज्ञान मिल लय थे

उनका चौथा आक्षेप है कि रूपक–तत्त्व वाले काव्य में व्यक्तिगत विशेषताओं का उल्लेख होता है, जबकि कामायनी के पात्रों में समष्टिगत विशेषताओं का उल्लेख है। परन्तु यह बात लेखक के उद्देश्य पर आधारित है कि उसके पात्र व्यक्तिगत विशेषताओं के प्रतिनिधि हों अथवा समष्टिगत विशेषताओं के।

सर्वप्रथम हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि कामायनी रूपक–काव्य नहीं है, हाँ उसमें रूपक की सम्भावना है और स्थान–स्थान पर उसमें दूसरा अर्थ प्रतिध्वनित भी होता है। पर कामायनी के पात्र ऐतिहासिक होते हुए भी प्रतीकार्थ रखते हैं और स्वयं कवि ने आमुख में इसे स्वीकार किया है। कामायनी का अधिकांश चित्रण भले ही ठोस यथार्थ पर आधारित हो, तथापि प्रसाद जी ने इतिहास में अपनी कल्पना का मधु पर्याप्त अंश में जोड़ा है, कथा में अनेक मौलिक उद्भावनाएं की हैं, वर्तमान युग की विभीषिकाओं एवं परिस्थितियों की भी उनके मन पर छाप थी, अतः ठोस यथार्थ या इतिहास पर पल्लवित होते हुए भी इसमें रूपकात्मकता का अवकाश था और कवि ने जगह–जगह उसमें दूसरा अर्थ जाने–अनजाने भरा है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

8.5 सारांश

सारांश यह है कि कामायनी रूपक–काव्य (Allegory) तो नहीं है, पर उसमें रूपकात्मकता विद्यमान अवश्य है।

8.6 कठिन–शब्द

1) श्लाघ्य 5) दुर्वृत्तियों

2) आद्यंत 6) क्षुब्ध

3) निवृत्ति 7) विन्यस्त

4) दुहिता 8) आक्षेप

8.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1 कामायनी के रूपक तत्व पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र2 कामायनी के प्रधान पात्रों पर विचार व्यक्त करें।

_____

_____

_____

8.8 सन्दर्भग्रन्थ/ पुस्तकें

1) कामायनी : एक अध्ययन – डॉ नगेन्द्र।

2) कामायनी अनुशीलन–रामलाल सिंह।

3) कामायनी, एक पुनर्विचार–मुक्तिबोध।

4) प्रसाद का काव्य–प्रेमशंकर।

5) कामायनी मूल्यांकन और मूल्यांकन–इन्द्रनाथ मदान।

.....

पंत का प्रकृति–चित्रण

9.0 रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 सुमित्रानंदन पंत का प्रकृति–चित्रण

9.3.1 आलम्बन रूप में प्रकृति–चित्रण

9.3.2 उद्दीपन रूप में प्रकृति–चित्रण

9.3.3 अलंकृत रूप में प्रकृति–चित्रण

9.3.4 उपदेश के निमित प्रकृति

9.3.5 रहस्यात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण

9.3.6 सम्वेदनात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण

9.4 निष्कर्ष

9.5 कठिन शब्द

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.7 पठनीय पुस्तकें

9.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप पंत के प्रकृति–चित्रण को जानेंगे।

– प्रकृति का चित्रण किन–किन रूपों में होता है इसका अध्ययन कर सकेंगे।

– प्रकृति के आलम्बन–उद्दीपन रूपों से परिचित हो सकेंगे।

9.2 प्रस्तावना

सुमित्रानंदन पंत प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाते हैं। उनके काव्य में प्रकृति हमें अनेक रूपों में दिखाई देती है। उनका स्वयं कहना है कि उन्हें कविता करने की प्रेरणा प्रकृति–निरीक्षण से ही मिली है। उनके काव्य में एक ओर मानव और प्रकृति के परस्पर आश्रित होने की वास्तविकता रेखांकित होती है, दूसरी ओर प्रकृति को लेकर पंत जी की चिंता, लगाव और आत्मीयता की पर्ते खुलती हैं।

9.3 पंत का प्रकृति–चित्रण

कविवर सुमित्रानंदन पन्त प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाते हैं। उनके काव्य में प्रकृति सुन्दरी की मनोहर छवियां अंकित की गई हैं। वे कोमल कल्पना के कवि हैं। वे स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि कविता करने की प्रेरणा मुझे प्रकृति निरीक्षण से प्राप्त हुई है– ''कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। प्रकृति–निरीक्षण और प्रकृति–प्रेम मेरे स्वभाव के अभिन्न अंगही बन गये हैं, जिनसे मुझे जीवन के अनेक संकटक्षणों में अमोद्य सान्त्वना मिली है।''

उदाहरण के तौर पर 'हिमाद्रि' शीर्षक रचना में भी प्राकृतिक सौन्दर्य के अनेक रूपों का चित्रण मिलता है–

''मेघों की छाया में संग–संग

हरित घाटियाँ चलती प्रतिक्षण,

वन के भीतर उड़ता चंचल

चित्र तितलियों का कुसुमित वन,

रंग–रंग के उपलों पर रणमण

उछल उत्स करते कल गायन,

झरनों के स्वर जम से जाते

रजत हिमानी सूत्रों में घन।''

'अतिमा' काव्य संकलन की 'संदेश' शीर्षक कविता में सुमित्रानंदन पंत ने नगरीकरण, कथित विकास, पर्यावरण–प्रदूषण में आकंठ डूबे लोगों को प्रकृति से उनके अनेक रिश्तों का स्मरण कराया है। यह स्मरण साभिप्राय है एक ओर इसमें मानव और प्रकृति के परस्पर आश्रित होने की वास्तविकता रेखांकित होती है, दूसरी ओर प्रकृति को लेकर पंत जी की चिंता, लगाव और आत्मीयता की पर्तें खुलती हैं–

''तुम भूल गए क्या मातृ प्रकृति को?

तुम जिसके आंगन में खेले कूदे, जिसके आंचल में

सोये–जागे, रोये जागे, हंस बड़े हुए

जो बाल सहचरी रही तुम्हारी, स्वप्नप्रिया

जो कला–मुकुर बन गयी तुम्हारे हाथों में''

सुमित्रानंदन पंत ने कई स्थलों पर स्वीकार किया है कि उनके 'कवि' बनने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका पर्वतीय अंचल की प्रकृति की है। 'मेरा बचपन' शीर्षक वार्ता में उनकी आत्मस्वीकारोक्ति है– ''बचपन में मुझे पुस्तकों से कहीं अधिक कौसानी की हंसमुख चंचल हरियाली ने और नीले स्वच्छ आसमान ने सिखाया है। धरती की हरियाली, आसमान की नीलिमा, धूप का उजलापन और हवा की निर्मल चंचलता अनजाने में चुपचाप जो पाठ सिखाती है वह बचपन में पुस्तकों को रटने से नहीं मिल सकती। 'रश्मिबंध' की परिदर्शन शीर्षक भूमिका में भी उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है– ''मेरे किशोर प्राण मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौन्दर्य को है, जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ हूँ।'' अनेक कविताओं में पंत 'कौसानी' को जिस तरह स्मरण करते हैं उससे भी 'मुग्ध' प्रकृति का आत्म–समर्पण प्रमाणित होता है। 'हिमाद्रि' कविता में पर्वतीय सौन्दर्य के निमित्त हिमगिरि को उन्होंने अपना गुरू ही मान लिया है, जिसने उनके अन्तर्मन को अपने सौन्दर्य, ज्योति और गौरव से भर दिया है–

''सोच रहा किसके गौरव से

मेरा यह अन्तर्जग निर्मित।

लगता, तब हे प्रिय हिमाद्रि

तुम मेरे शिक्षक रहे अपरिचित''

प्रकृति का बहुरंगी सौन्दर्य पंत जी के युवा मन पर इतना अधिक हावी रहा है कि उसके आगे किसी युवती के सौन्दर्य का आकर्षण भी फीका पड़ता रहा–

''छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,

तोड़ प्रकृति से भी माया।

बाले तेरे बाल जाल में

कैसे उलझा दूं लोचन?

भूल अभी से इस जग को।''

पंत छायावाद के यशस्वी कवि हैं। छायावाद 'प्रकृति' पर इतना निर्भर है कि डॉ. नगेन्द्र सरीखे आलोचकों ने इसे 'प्रकृति काव्य' की संज्ञा दी है। वैसे तो पंत के समग्र काव्य में 'प्रकृति' विभिन्न रूपों में है लेकिन 'वीणा', 'ग्रंथि', 'पल्लव' और 'गुंजन' में उसका सौन्दर्य मनोरम, आत्मीय और नवीन है। प्रकृति–चित्रण के जितने रूप हो सकते हैं, वे पंत–काव्य में न्यूनाधिक उपलब्ध हैं।

पंत के प्रकृति चित्रण की एक विशेषता यह भी है कि उन्हें प्रकृति के कोमल एवं सुकुमार रूप ने ही अधिक मोहित किया है। सामान्यतः उनके काव्य में प्रकृति के भयानक रूप का चित्रण नहीं है। पन्त के काव्य में प्रकृति के यद्यपि सभी रूप उपलब्ध होते हैं तथापि आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण उन्हें विशेष प्रिय है। इसके अतिरिक्त वे उद्दीपन रूप, संवेदनात्मक रूप में, रहस्यात्मक रूप में, प्रतीकात्मक रूप में, अलंकार योजना के रूप में, मानवीकरण रूप में तथा लोकशिक्षा के रूप में प्रकृति चित्रण करते दिखाई पड़ते हैं। पन्त जी के प्रकृति चित्रण की विशेषताओं का निरूपण निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है–

9.3.1 आलम्बन रूप में प्रकृति–चित्रण

जहाँ प्रकृति को आलम्बन बनाकर उसके नाना रूपों का चित्रण किया जाता है वहाँ आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे विद्वान आलम्बन रूप में प्रकृति–चित्रण के समर्थक थे। संभवतः स्वतन्त्र रूप में प्रकृति चित्रण कवि की अतिरिक्त संवेदनशीलता का द्योतक होता है। आलंबन रूप में प्रकृति के चित्रण के दो प्रकार हैं। एक तो यथावत् या यथातथ्यात्मक रूप में प्रकृति के उपादानों का चित्रण होता है, दूसरे प्रकार में प्रकृति के वर्णन के साथ उसके प्रभाव को भी जोड़ दिया जाता है। इसमें प्रकृति के उपकरणों का नाम परिगणन मात्र नहीं होता। शुद्ध प्रकृति–चित्रण पंत के प्रारंभिक काव्य में भी कम मिलते हैं। कोई न कोई अनुभूति या अलंकार–विशेषतः मानवीकरण साधारण वर्णन को असाधारण बना देता है चूंकि छायावादियों ने प्रायः प्रकृति को अपने दुख'सुख की सहचरी के रूप में देखा है, अतः केवल पेड़ों, नदियों, बादलों का वस्तुगत वर्णन संभव भी नहीं था। 'पर्वत प्रदेश में पावस' शीर्षक कविता में प्रारंभ तो प्रकृति के सामान्य परिवर्तन की सूचना से है, लेकिन शीघ्र ही अलंकरण का हस्तक्षेप होने लगता है–

''पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश

पल–पल परिवर्तित प्रकृति–वेश।

मेखलाकार पर्वत अपार

अवलोक रहा है बार–बार

नीचे जल में निज महाकर''

पंत जी की अनेक कविताओं में यथा–एकतारा, गुंजन, परिवर्तन, बादल, हिमाद्रि, नौका विहार आदि में आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण किया गया है। 'आंसू' कविता में बादलों के सौन्दर्य का चित्रण आलम्बन रूप में करते हुए वे कहते हैं–

''बादलों के छायामय खेल

घूमते हैं आंखों में फैल।

अवनि औ अम्बर के वे खेल शैल में जलद जलद में शैल।।''

पंत जी की प्रसिद्ध कविताओं में 'मौन निमंत्रण' और 'बादल' में जहाँ–तहाँ आलम्बन रूप में प्रकृति है, लेकिन शीघ्र ही वह कवि की विस्मय भावना का आलम्बन बन जाती है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

तुमुल तम में जब एकाकार

ऊँघता एक साथ संसार,

भीरु झींगुर कुल की झनकार

कँपा देती तंद्रा के तार,

न जाने खद्योतों से कौन

मुझे पथ दिखलाता तब मौन।''

इस उदाहरण में अंधेरी रात का वर्णन, झींगुर की झनकार आदि का वर्णन आलंबन रूप में ही है लेकिन अंतिम दो पंक्तियों में प्रकृति उदीप्त कर विस्मय की सृष्टि करती है। इसी तरह 'बादल' कविता अनेक नयी कल्पनाओं से भरी पड़ी है और कई अद्‌भुत चित्र रचे गए हैं। ये सभी यथातथ्य प्रकृति–चित्रण से अलग संश्लिष्ट आलंबन चित्रण की परिधि में आएँगे। कल्पना और अलंकार–योजना के सहयोग से इस तरह का चित्रण अत्यन्त संवेदनात्मक बन पड़ा है एक उदाहरण इस प्रकार है–

''कभी अचानक भूतों का–सा

प्रकटा विकट महा–आकार

कड़क–कड़क, जब हंसते हम सब

थर्रा उठता है संसार।''

'नौका विहार' कविता हालांकि 'मानवीकरण' और गंभीर चिंतन से संश्लिष्ट है, फिर भी कहीं–कहीं उसमें आलम्बन रूप प्रकृति का वैभव व्यक्त हो जाता है–

''चांदनी रात का प्रथम पहर

हम चले नाव लेकर सत्वर

सिकता की सस्मित सीपी पर

मोती की ज्योत्स्ना रही विचर।''

पंत जी की छायावादी दौर की कविताओं में प्रकृति के प्रति गहरा विस्मय और कौतूहल का भाव मिलता है। कुछ आलोचक इसे 'रहस्यवाद' का प्रभाव मानते हैं, जबकि यह उनके प्रकृति से लगाव से सम्बद्ध जिज्ञासा की देन है। डॉ. हरिचरण शर्मा का विचार है ''विस्मय भावना छायावादी कविता की प्रमुख विशेषता है। प्रातः बेला में पक्षियों की चहक और उसकी मधुर तान से विस्मय, विमुग्ध होकर इस प्रकार का प्रश्न कोई छायावादी कवि ही कर सकता था, जिसके पास उर्वर कल्पना थी और रोमनी–दृष्टि भी। जिस प्रश्न की ओर डॉ. हरिचरण शर्मा का संकेत है वह 'वीणा' की 'प्रथम रश्मि' कविता में विद्यमान है–

''प्रथम रश्मि का आना रंगिणि,

तूने कैसे पहचाना?

कहाँ–कहाँ हे बाल विहंगनी

पाया, तूने यह गाना?''

यही विस्मय–भाव 'छाया' और 'बादल' सरीखी कविताओं में और भी कलात्मक रूप में उभरा है। कवि प्रकृति को देखकर बार–बार चकित होता है, कौतूहल से भर उठता है और अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ उसे घेर लेती हैं। 'हिमाद्रि' कविता में अपने विस्मय–भाव को पंत जी ने स्पष्ट कहा है–

''बाल्य चेतना मेरी तुम में

जड़ीभूत आनन्द तरंगित,

तुम्हें देख सौन्दर्य–साधना

महाश्चर्य से मेरी विस्मित।''

संश्लिष्ट आलंबन–चित्रों में एक विशेष भाव बार–बार मुखर होता है। कवि को 'प्रकृति' किसी उड़ने वाले पक्षी का गतिशील बिम्ब हमेशा देती है। कभी घाटी उड़ने को तैयार लगती है तो कभी पहाड़ उड़ते हुए लगते हैं। 'अलमोड़े का बसंत' कविता से एक उदाहरण–

''लो, चित्रशलभ सी, पंख

खोल उड़ने को है कुसुमित घाटी–

यह है अलमोड़े का बसंत

खिल पड़ी निखिल पर्वत–घाटी।''

'पर्वत प्रदेश में पावस' कविता से उदाहरण–

''उड़ गया अचानक लो भूधर

फड़का अपार वारिद के पर''

'एक तारा' कविता से उदाहरण–

''तरू शिखरों से वह स्वर्ण विहग

उड़ गया खोल निज पंख सुभग

किस गुहा–नीड़ में रे किस मग''

इन सभी में प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य है और कवि की आस्वादन क्षमता और संवेदनशीलता के अप्रतिम होने की गवाही देता है। 'ऊर्जा–संध्या' में सांझ का एक मनोहारी चित्र इस प्रकार है–

''सांस मुझे पर, अधिक सुहाती

छायी निर्जन गिरि आँगन पर''

9.3.2 उद्दीपन रूप में प्रकृति–चित्रण

जहाँ प्रकृति मानवीय भावनाओं को उदीप्त करती है, वहाँ उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण होता है। संयोग काल में जहाँ प्रकृति सुख को उदीप्त करती है, वहीं वियोग काल में विरह वेदना को उदीप्त करती है। 'रश्मिबंध' की भूमिका में पंत जी ने कहा है' ''प्रकृति–सौन्दर्य और प्रकृति–प्रेम की अभिव्यंजना 'पल्लव' में अधिक प्रांजल तथा परिपक्व रूप में हुई है।'' 'ग्रंथि से', आंसू, आदि अनेक कविताएँ साक्ष्य के रूप में पढ़ी जा सकती हैं। 'ग्रंथि' में बसंत का आगमन पूरे संसार की कामनाओं को उकसाने वाला है–

''जान कर ऋतुराज का नव आगमन

अखिल कोमल कामनाएं अवनि की खिल उठी थी''

'गाता खग' में प्रकृति के दुखी और सुखी करने वाले दोनों रूप हैं। डूबते हुए तारे कवि–मन को रूला जाते हैं जबकि हंसते हुए फूल हंसी के लिए प्रेरित करते हैं–

''हंसमुख प्रसून सिखलाते

पल भर है, जो हंस पाओ अपने उर के सौरभ

से जग का आंगन भर जाओ।''

'दिवा स्वप्न' कविता में नव मुकुलों की सौरभ मन को उन्मत्त करती है और कवि को लगता है कि भव–बाधा से त्राण तभी संभव है, जब वह वहाँ जाकर प्रकृति की गोद में छिप जाए–

''वहीं कहीं, जी करता, मैं जाकर छिप जाऊं

मानव–जग के क्रंदन से छुटकारा पाऊं''

प्राकृतिक सौन्दर्य केवल शांति ही नहीं देता, कभी–कभी प्रणय के उन्माद की सृष्टि भी करता है–

''देखता हूं जब उपवन

पियाले में फूलों के

प्रिय भर–भर अपना यौवन

पिलाता है मधुकर को''

यह सामान्य सा नियम है कि जो प्राकृतिक उपादान संयोग वेला में सुख बढ़ाते हैं, विरह के क्षणों में वे ही व्यथा के निमित्त बन जाते हैं। कवि को प्रकृति भी विलाप करती सी लगती है–

''गहन व्यथा से रंगे सांझ के बादल

मौन वेदना रंजित फूलों के दल

मधु समीर भी श्वास–गंध से चंचल

सांसे भर–भर तुम्हें खोजती विह्वल''

'लोकायतन' आदि कृतियों में भी उद्दीपन रूप में अनेक प्रकृति–चित्र मिलते हैं। जिसमें ग्राम वधू की एक अनुभूति इस प्रकार व्यक्त हुई है–

''चकई–चकवा जमुना तट पर

तिरते मिला सुनहले प्रिय पर

पहर न कटते पूस निशा के

श्याम बिना डसता सूना घर''

9.3.3 अलंकृत रूप में प्रकृति–चित्रण

पंत के काव्य में प्रकृति अलंकृति रूप में सर्वाधिक दिखाई देती है। अलंकारों में भी 'मानवीकरण' प्रकृति–चित्रण में बहुत कम आया है। वस्तुतः प्रकृति पर चेतना का आरोप सम्पूर्ण छायावादी कविता की विशेषता है और 'मानवीकरण' इस कार्य में सबसे अधिक सहायक होता है। मानवीकरण से तात्पर्य है किसी मानवेतर वस्तु पर मानवीय रूपों, व्यापारों तथा भावों का आरोपण। पंत जी के अधिकांश प्रकृति विषयक गीत, प्रकृति–विषयक होने के साथ ही मानव–विषयक भी प्रतीत होते हैं। पंत जी की बादल, छाया, संध्या, मौन निमंत्रण, परिवर्तन, नौका विहार आदि प्रसिद्ध कविताओं में प्रकृति अलंकारों से सज–संवर कर व्यक्त हुई है। संध्या–सुंदरी का एक रमणीय चित्र इस प्रकार है–

''कहो तुम रूपसि कौन?

व्योम से उतर रही चुपचाप

छिपी निज छाया छवि में आप

पलकों में निमिष, पदों में चाप।''

'बादल' कविता में बादल अपना जो परिचय देते हैं उसमें मानवीकरण का सौन्दर्य देखते बनता है–

'सुरपति के हम ही हैं अनुचर

जगत प्राण के भी सहचर,

मेघदूत की सहज कल्पना

चातक के चिर जीवनधर,

'मौन निमंत्रण' कविता से एक उदाहरण–

चकित रहता शिशु–सा नादान,

विश्व के पलकों पर सुकुमार

खोलती कलिका उर के द्वार,

देख वसुधा का यौवन भार''

इन पंक्तियों में अलंकरण से प्रकृति का सौन्दर्य और दीप्त हो उठा है। 'परिवर्तन' कविता के कुछ अंशों में भी प्रकृति अलंकृत रूप में उपस्थित है। पंत जी की यह विशेषता है कि वे केवल, कोई चित्र उपस्थित करने के लिए प्रकृति को अलंकारों से नहीं सजाते हैं। क्षण–भंगुरता और सतत् परिवर्तनशीलता के प्रमुख पक्ष को निम्नलिखित पंक्तियों में सलीके से कहा गया है–

''आज तो सौरभ का मधुमास

शिशिर में भरता सूनी साँस

वही मधुऋतु की गुंजित डाल

झुकी थी जो यौवन के भार

अंकिचनता में निज तत्काल

सिहर उठती जीवन है भार''

'नौका विहार' में 'गंगा' को तापस बाला के रूप में देखा और अंकित किया गया है–

''तापस बाला गंगा निर्मल

शशि, मुख से दीपित मृदु करतल

लहरें उर पर कोमल कुंतल''

जहाँ मानवीकरण का योगदान नहीं है वहाँ भी उपमा, रूपक आदि की सहायता से ताजे प्रकृति–चित्र उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिए 'एक तारा' कविता का यह अंश–

''गंगा के चल जल में निर्मल

कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल

है मूंद चुका अपने मृदुदल

लहरों पर स्वर्ण रेख सुन्दर

पड़ गयी नील, ज्यों अधरों पर

अरुणाई प्रखर शिशिर से डर''

'हिमाद्रि' में पार्वती के अनेक संबोधनों को लेकर हिमालय की सुषमा का अंकन ध्यान आकर्षित करता है–

''जब भी ऊषा वहाँ दीखती

वधू उमा के मुखसी लज्जित

बढ़ती चंद्रकला भी गिरिजा सी

हो गिरि के क्रोड़ में उदित।''

'हिमप्रदेश', 'गिरि प्रांतर' आदि परवतर्ती कविताओं में जहाँ भी प्रकृति आती है, कवि अनेक प्रकार की कल्पनाओं को गूंथने लगता है। कहीं 'किरणों की भेड़ें चरतीं' जैसे आकर्षक बिम्ब मिलते हैं तो कहीं प्रकृति का किंचित् भयावह रूप भी सामने आता है–

''चीलों से मंडरा बन–अंधड़

गूँगी खोहों में खो जाते''

पर्वतीय प्रदेश को 'कुसुमित श्रृंगार कक्ष' बताना एक सुन्दर स्वच्छंदतावादी कल्पना है–

भू की परिक्रमा कर ऋतुएँ

वहाँ पास करतीं प्रति वत्सर

वह कुसुमित श्रृंगार कक्ष था

गंध वर्ण ध्वनि ग्रथित मनोहर

प्रचुर प्रकृति–चित्रों के बावजूद पंत काव्य में पुनरावृत्ति का अभाव है। वे प्रकृति के सुकुमार कवि माने गए हैं और उनके पास उसके सौन्दर्य का वैभव इतना है कि बार–बार लुटाने से भी कम नहीं पड़ता। इसीलिए नदी, पहाड़ और झरने आदि उनकी कविता में जब भी आते हैं, नए रूप में आते हैं, नए अलंकारों के साथ आते हैं। 'हिमाद्रि' में जाड़े की ऋतु में झरने की स्थिति को झरनों के स्वर जम से जाते' कहकर मूर्त किया गया है, जबकि 'गिरि–प्रान्तर' कविता में रूपक के सहयोग से झरनों का यह रूप उभरा है–

मरकत की घाटी में सुलग

वनफूलों के झरने गाते

'हिम प्रदेश' कविता में 'वन फूलों' के स्थान पर 'दूध फेन' का अप्रस्तुत प्रयुक्त हुआ है–

दूध फेन के स्त्रोत उफनते

गिरि के गीत मुखर आँगन में

9.3.4 उपदेश के निमित्त प्रकृति

प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से जीवन सत्यों की अभिव्यक्ति करने और किसी तरह का संदेश या उपदेश देने की प्रवृति भी पंत जी की कुछ कविताओं में उपलब्ध है। एक ही चरम सत्य, सृष्टि के कण–कण में विद्यमान है, इस चिंतन को 'परिवर्तन' कविता में विस्तार से कहा गया है। फूल और फल के बहाने से आत्म बलिदान के महत्त्व को इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

''म्लान कुसुमों की मृदु मुस्कान

फलों में फिरती फिर अम्लान

महत् है अरे आत्म–बलिदान

जगत केवल आदान–प्रदान''

'नौका–विहार' में कविता का अंत दार्शनिकता लिए हुए है, कवि ने गंगा की धार को संसार के जीवन प्रवाह का प्रतीक बना दिया है–

इस धारा सा ही जग का क्रम

शाश्वत इस जीवन का उद्‌गम

शाश्वत है गति, शाश्वत संगम।''

'संदेश' शीर्षक कविता में धूप का मानवीकरण है। धूप कवि को प्रकृति की ओर लौटने का संदेश देती है–

''लो, मैं असीम का लायी हूँ संदेश तुम्हें।

आओ, फिर खुली प्रकृति की गोदी में बैठो।''

9.3.5 रहस्यात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण

छायावादी कवि पन्त ने प्रकृति में उस अज्ञात अगोचर सत्ता के दर्शन जहाँ किए हैं वहाँ रहस्यात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण माना गया है। पन्त की 'मौन निमन्त्रण' कविता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है क्योंकि उसमें कवि को सर्वत्र उस अज्ञात सत्ता के मौन निमन्त्रण का आभास होता है–

''देख वसुधा का यौवन भार गूँज उठता है जब मधुमास।

विधुर उर के से मृदु उद्‌गार कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्‌वास

न जाने सौरभ के मिस कौन सन्देशा मुझे भेजता मौन?''

9.3.6 सम्वेदनात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण

जहाँ प्रकृति मानव के साथ सम्वेदना व्यक्त करती हुई मानव की प्रसन्नता एवं हास–उल्लास के क्षणों में स्वयं उल्लास व्यक्त करती है तथा उसके दुख के क्षणों में स्वयं रूदन करती जान पड़ती है, वहाँ सम्वेदनात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण माना जाता है। 'परिवर्तन' कविता की इन पंक्तियों में मानव जीवन की क्षणभंगुरता को देखकर आकाश रोता सा प्रतीत होता है और वायु निश्वास भरती सी लगती है–

''अचिरता देख जगत की आप शून्य भरता समीर निश्वास।

डालता पातों पर चुपचाप ओस के आंसू नीलाकाश।''

9.4 निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि सुमित्रानंदन पंत की कविता में प्रकृति चाहे जिस रूप में अवतरित हुई, उसके सौन्दर्य–चित्रण पर पंत जी की अपनी आन्तरिक प्रकृति, रूचि और सौन्दर्यबोध की छाप स्पष्ट है। प्रकृति के सौन्दर्य में नए अर्थ और सार्थकता खोजने में पंत जी की महत्वपूर्ण भूमिका है। पंत की कविताओं से समाज और प्रकृति का संतुलन, व्यक्ति और प्रकृति का संतुलन, इतिहास और प्रकृति का सन्तुलन से एक नये युग का निर्माण होता है। इस तरह प्रकृति के प्रति निश्चल राग ने पंत के प्रकृति चित्रण को अधिक संवेद्य और संप्रेषणीय बनाया है।

9.5 कठिन शब्द

1. संप्रेषणीयता
2. क्षणभंगुरता
3. सम्वेदनात्मक
4. पुनरावृत्ति
5. अलंकरण
6. सतत्
7. यथातथ्य
8. संश्लिष्ट
9. नैसर्गिक
10. आकंठ

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. सुमित्रानंदन पंत के प्रकृति–चित्रण पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र०2. पंत के काव्य का आलम्बन रूप में प्रकृति–चित्रण कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०3. प्रकृति के मानवीकरण को स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०4. उद्दीपन रूप में प्रकृति का वर्णन कीजिए।

_____

_____

_____

9.7 पठनीय पुस्तकें

1. डॉ. नगेन्द्र– सुमित्रानंदन पंत, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1938
2. नामवर सिंह– छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
3. रमेशचन्द्र शाह– छायावाद की प्रासंगिकता, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1973
4. सूर्यप्रसाद दीक्षित – पंत का प्रकृति–चित्रण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1973

सुमित्रानंदन पंत की दार्शनिकता

10.0 रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 सुमित्रानंदन पंत की दार्शनिकता

10.3.1 औपनिषदिक चिंतन का प्रभाव

10.3.2 गांधीवादी विचारधारा

10.3.3 मार्क्सवादी जीवन–दर्शन

10.3.4 अरविन्द दर्शन

10.3.5 नव मानवतावादी दर्शन

10.4 निष्कर्ष

10.5 कठिन शब्द

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.7 पठनीय पुस्तकें

10.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप पंत के प्रकृति–चित्रण को जानेंगे–

- सुमित्रानंदन पंत की दार्शनिकता सम्बन्धी विचारों का अध्ययन
- सुमित्रानंदन पंत के औपनिषदिक चिंतन का प्रभाव क्या है।

– पंत की गांधीवादी विचारधारा को जान पायेंगे।

– पंत की अरविन्द दर्शन सम्बन्धी विचारों को जान पायेंगे।

10.2 प्रस्तावना

सुमित्रानंदन पंत जी आरम्भ से ही अपनी दार्शनिक चेतना के प्रति सजग कवि रहे हैं। एक गंभीर और चिंतनशील विचारक के साथ–साथ वह एक संवेदनशील कवि भी रहे हैं। इनकी कविताओं में उनके स्वानुभूत जीवन–दर्शन की झलक देखने को मिलती है। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य दोनों तरह की विचारधाराओं को अपने काव्य में स्थान दिया है। वह जीवन और जगत के प्रति एक निश्चित सिद्धान्त और दृष्टिकोण अपनाते हैं।

10.3 पंत की दार्शनिकता

प्रत्येक कवि जीवन और जगत के विषय में एक निश्चित सिद्धान्त बनाकर चलता है। यह सिद्धान्त सामयिक उपयोगिता के आधार पर बदल भी सकता है, किन्तु उसकी मूल चेतना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पंत जी की दर्शनिक चेतना प्रारम्भ से ही सजग रही है। वे जितने संवेदनशील कवि रहे हैं, उतने ही गंभीर और चिंतनशील विचारक भी। उनकी कविताओं में उनका स्वानुभूत जीवन–दर्शन केन्द्रस्थ है। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य दोनों तरह की चिंतन परम्पराओं को अपने काव्य में आत्मसात् किया है। उनकी दार्शनिकता को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत विवेचित कर सकते हैं–

10.3.1 औपनिषदिक चिंतन का प्रभाव

10.3.2 गांधीवादी विचारधारा

10.3.3 मार्क्सवादी जीवन–दर्शन

10.3.4 अरविन्द दर्शन

10.3.5 नव मानवतावादी चिंतन

सुमित्रानंदन पंत की प्रारम्भिक कशतियों में 'संवेदना' का विराट वैभव फैला हुआ है, किन्तु 'दार्शनिकता' काव्यात्मकता की अनेक परतों के नीचे ठोस आधार बनी हुई है।

10.3.1 औपनिषदिक चिंतन का प्रभाव

कविवर पंत कभी किसी एक चिंतन–सरणि से बंधकर नहीं रहे। उन्हें जिस जगह से जो उपयोगी चिंतन–सूत्र मिला, उसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। वेदों और उपनिषदों की अनेक अवधाराणाएँ उनके काव्य में प्रारम्भ

से लेकर 'लोकायतन' ओर 'सत्यकाम' तक निरन्तर उपस्थित है। इस विषय में अनेक विद्वानों ने अपना पक्ष रखा है जिसमें डॉ. प्रेमशरण रस्तोगी जी का मानना है कि 'पंत जी की आध्यात्मिकता औपनिषदिक और वैदिक ऋषियों क्षरा व्यापक सत्यों पर आधारित है।' डॉ. प्रताप सिंह चौहान का मानना है कि 'पल्लव से लेकर गुंजन तक की रचनाओं में चिंतन के परिवेश में औपनिषदिक दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है।'

'परिवर्तन', 'नौका विहार' आदि अनेक कविताओं में कवि का मानना है कि एक ही परम सत्ता विश्व की हर वस्तु में विद्यमान है, इस सत्य को उन्होंने कई तरह से अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। 'परिवर्तन' कविता का यह अंश इस संदर्भ में पठनीय है–

''एक ही तो असीम उल्लास

विश्व में पाता विविधाभास

तरल जलनिधि में हरित विलास

शांत अंबर से नील विकास

.....

विविध द्रव्यों में विविध प्रकार

एक ही मर्म मधुर झंकार''

पंत जी संसार को मिथ्या तो नहीं मानते, लेकिन जीवन की क्षण–भंगुरता, निस्सारता की चर्चा करते हैं। मृत्यु को अनिवार्य सत्य मानते हैं लेकिन भारतीय चिंतन–पद्धति के अनुरूप वे मरण को जीवात्मा का उस परम सत्ता में लय स्वीकार करते हैं–

''फूल, रच भव स्वप्न असार
बीज में लय फिर हुआ अनंत''

चाहे जीवन हो या मृत्यु या जीवन के अन्य भेद–प्रभेद, सर्वत्र एक ही सत्य की व्याप्ति है, यह बात उनकी कई रचनाओं में निष्कर्ष रूप में कही गयी है–

''अन्न प्राण मन आत्मा केवल

ज्ञान भेद है सत्य के परम

इन सबमें चिर व्याप्त ईश रे

मुक्त सच्चिदानंद चिरंतन''

वीणा में कवि उस परम सत्ता को संबोधित कर कहता है–

''मां, वह दिन आवेगा जब

मैं तेरी छवि देखूंगी

जिसका यह प्रतिबिम्ब पड़ा है

जग के निर्मल दर्पण में।''

'एक तारा' कविता में कवि ने गहन आत्मदर्शन की अभिव्यक्ति की है–

''वह रे! अनन्त का मुक्त मीन,

अपने असंग सुख में विलीन,

स्थित निज स्वरूप में चिर नवीन''

पंत जी यह दार्शनिक चेतना उत्तरोतर विकास को प्राप्त होती गई है और परवर्ती काव्य में यह अपने प्रौढ़ विकसित रूप में दिखाई देती है। 'आधुनिक कवि' की भूमिका में पंत जी की स्पष्ट स्वीकारोक्ति है कि उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे रागतत्व में मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रवाह की दिशा बदल दी। लेकिन पंत–काव्य की दार्शनिकता केवल उपनिषदों के चिंतन तक सीमित नहीं है। उस पर नये–नये दर्शनों का भी पर्याप्त प्रभाव है।

10.3.2 गाँधीवादी विचारधारा

महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व और चिंतन से पंत जी पर्याप्त प्रभावित हुए थे। अतः उनकी कई कविताओं में गाँधीवाद के विचार–सूत्रों का समर्थन मिलता है। 'रश्मिबंध' की भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है कि छायावादी कविता के भावपक्ष पर महात्मा जी के सांस्कृतिक व्यक्तित्व का बहुत प्रभाव पड़ा है। उन्होंने गांधी जी पर कई कविताएँ लिखी हैं। 'बापू', 'महात्मा जी के प्रति' आदि कविताएँ प्रमाण के रूप में पढ़ी जा सकती हैं। वे गाँधी जी को 'नव संस्कृति के दूत' के रूप में मान्यता देते हैं, जो मानव की आत्मा का उद्धार करने आया था। अनेक संदेहों के बावजूद उन्हें विश्वास है कि कुछ गांधीवादी मूल्य हमेशा मानव के हित के लिए उपयोगी बने रहेंगे। 'बापू' कविता से एक उदाहरण–

''नहीं जानता युग विवर्त में होगा कितना जन–क्षय

पर मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेंगे निश्चय।''

गाँधीवाद में पशुता और हिंसा का विरोध है और विश्व की कल्याण–कामना उसे अभीष्ट है। 'विनय' कविता में पंत जी ने कुछ इसी प्रकार के मनोभाव व्यक्त किए हैं–

''संस्कृत हों, सब जन, स्नेही हों, सहृदय, सुन्दर।

संयुक्त कर्म पर विश्व एकता हो निर्भर''

वे गाँधी जी की हत्या से बहुत दुखी होते हैं और उनकी कामना है कि हिंसा का तिरोभव हो और अहिंसा का मूल्य स्थापित हो। उस दुखद घटना को याद करते हुए वे 'अहिंसा' की पक्षधरता इन शब्दों में व्यक्त करते हैं–

''स्वर्गदूत की नरबाल दे फिर

रक्त पूत क्या हुए धरा कण।

भ्रांतिमुक्त हो सका शप्त क्या

मध्य युगों का शील रूग्ण मन?

नम्र अहिंसक को हिंसा की

क्रर विदा। रे दैव दग्ध क्षण।

हिंसा यदि उठ जाय धरा

तो जन भू का भरे आर्द्र व्रण।''

लेकिन गाँधीवाद पंत जी को बहुत समय तक संतुष्ट नहीं कर सका था। उन्होंने स्वयं कहा है– ''जीवन यथार्थ की प्रथम प्रेरणा मुझे गाँधीवाद से मिली, किन्तु उसकी सामूहिक वैश्व परिणति के लिए इस विज्ञान के यंत्र–युगमें जिस आर्थिक पीठिका की आवश्यकता थी, वह मुझे इसमें नहीं मिल सकने के कारण मेरे मन ने समाजवादी अर्थव्यवस्था के जीवन–यथार्थ को अधिक पूर्ण तथा वैज्ञानिक मूल्य के रूप में स्वीकार किया।'' 'ग्राम्या', 'युगवाणी' में उन पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव मिलता है। लेकिन कुछ समय के पश्चात् 'लोकायतन' में वे फिर एक बार गाँधी–दर्शन से जुड़ गए। इस महाकाव्य में नम्र अहिंसा को मूल्यवान और मानवता का कल्याण करने वाली माना गया है। महात्मा गाँधी के लिए कहा गया है–

''आदर्श व्यावहारिक तुम

युग सेतु, कर गए निर्मित

भौतिक आध्यात्मिक जग के

शिखरों पर सत्य समन्वित''

डॉ. हरिचरण शर्मा ने 'लोकायतन' के विषय में लिखा है– ''कवि पंत ने वस्तुतः लोकायतन में जिन दर्शनो की अभिव्यक्ति की है, वह आध्यात्मिक दर्शन है, जिसकी पीठिका गांधीदर्शन है। गांधीवादी दर्शन से हृदय का सारा भेद भाव

मिट जाता है, मन का संशय जाता रहता है और मानवता का विकास होता है। इसी कारण कवि ने इस नयी चेतना का नया पृष्ठ कहा है।

10.3.3 मार्क्सवादी जीवन–दर्शन

'रश्मिबंध' के 'परिदर्शन' में पंत जी ने संकेत किया है कि 'ग्राम्य' और 'युगवाणी' में उनका जीवन दर्शन आमूल परिवर्तित नहीं हुआ था, जैसा कि कुछ समीक्षक मानते हैं। मार्क्सवाद से जुड़ने से उनका कवि वस्तु जगत् के संघर्ष को समझने लगा और उसकी वास्तविकता को महत्व देने लगा। कई आलोचकों को भी लगता है कि अपनी काव्ययात्रा के इस दौर में पंत 'प्रगतिशील' तो हो गए थे, लेकिन वे मार्क्सवादी पद्धति की अर्थव्यवस्था और वर्ग–संघर्ष के प्रति आश्वस्त नहीं थे। लेकिन 'युगवाणी' में मार्क्स के प्रति उनका आकर्षण प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त हुआ है–

''धन्य मार्क्स! चिर तमाच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर।

तुम त्रिनेत्र के ज्ञान–चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।''

'नव–संस्कृति' कविता में वर्गविहीन शोषण–मुक्त समाज की स्थापना का स्वप्न देखा गया है। यहाँ मार्क्स के दर्शन का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है–

''रूढ़ि रीतियाँ जहाँ न हो आधारित।

श्रेणि वर्ग में मानव नहीं विभाजित।

धन–बल से हो जहाँ न जन–श्रम शोषण।

पूरित भव जीवन के निखिल प्रयोजन।

'ताज' कविता से एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''शव को दें हम रूप, रंग, आदर मानव का

मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का?''

'युगवाणी' की 'दो लड़के' कविता में भी समतामूलक समाज की स्थापना की आवश्यकता समझी गयी है। 'जग का अधिकारी है वह, जो दुर्बलेतर, क्यों न एक हो मानव–मानव सभी परस्पर' आदि पंक्तियों से यही ध्वनि निकलती है। वस्तुतः 'ग्राम्या' की कविताओं में श्रमजीवियों की दुर्दशा का बयान है। उनकी पीड़ा से संतप्त कवि एक नयी व्यवस्था के गढ़ जाने का स्वप्न देखता है। उसे लगता है कि नयी व्यवस्था में श्रमिकों का उत्पादन के साधनों पर अधिकार होगा–

''साक्षी–इतिहास आज होने को पुनः युगांतर–

श्रमिकों का शासन–होगा अब उत्पादन–यंत्रों पर

वर्गहीन सामाजिकता देगी, सबको सम साधन

पूरित होंगे जन के भव–जीवन के निखिल प्रयोजन''

छायावादी कवियों में पंत संभवतः अकेले कवि हैं, जिन्होंने गांधीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय करने का प्रयास किया है। वे शोषण मुक्त समाज की स्थापना अहिंसक तरीके से करने के पक्ष में लगते हैं। इसके बावजदू यह सत्य है कि उनके दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में मार्क्सवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है।

10.3.4 अरविन्द–दर्शन

'उत्तरा' काव्य–संग्रह की भूमिका में पंत जी ने लिखा है कि अरविन्द दर्शन पढ़ते–पढ़ते उन्हें लगा कि उनके अपने अस्पष्ट स्वप्न–चिंतन को किसी ने अत्यंत तर्कपूर्ण, सुगठित एवं सुस्पष्ट दर्शन के रूप में रख दिया है। 'स्वर्ण धूलि', 'स्वर्ण किरण', 'उत्तरा' आदि कृतियों की अनेक कविताएँ अरविन्द–दर्शन की चमक लिए हुए हैं। अरविन्द के अनुसार जड़ और चेतन दोनों ब्रह्म के चैतन्य तत्व से परिपूर्ण हैं। जड़ में चेतन तत्व तमस् के रूप में अवचेतन में प्रसुप्त हैं। ब्रह्म की चेतना–किरण के ज्ञान से वह तमस् मिट जाता है। पंत जी ने इस संदर्भ में लिखा है–

''यह अंधकार का घोर प्रहर

हो रहा हृदय चेतना द्रवित

फिर मानवीय वन जाग रही

जड़–भूत शक्तियाँ अभिशापित''

अन्यत्र 'निर्माण काल' कविता में भी इस जड़ता और तमस् के नष्ट होने का उल्लेख हुआ है–

''तम के पर्वत पर टूट रही

विद्युत प्रपात सी ज्योति प्रखर''

अरविन्द–दर्शन में प्रयुक्त पदों 'अन्तश्चेतना', 'आत्मा–एक्य', 'व्यक्ति–मुक्ति' आदि का कुछ रचनाओं में स्पष्ट उल्लेख है। दिव्य चेतना रूपी किरण के स्पर्श से सब कुछ बदल जाता है–

''सरों में हंसी लहर

ज्योति का जगा प्रहर

चेतना उठी सिहर

स्पर्श यह दिव्य अमर''

अरविन्द–दर्शन से प्रेरित कुछ कविताओं में गूढ़ता–गंभीरता है। कुछ लोगों को इन कविताओं की आध्यात्मिकता यथार्थ से पलायन लग सकती हैं। लेकिन पंत जी को लगता है कि 'जीवन्त मानव चैतन्य' से जुड़ी ये रचनाएँ यथार्थ–विरोधी नहीं है। नयी चेतना से सम्पन्न इन कविताओं में मनुष्य ही केन्द्र में हैं–

''कोटि सूर्य जलते रे उज्ज्वल उस माखन पर्वत के भीतर

मनुष्यत्व न बहिर्दीप्त वह अंतः संस्कृत, आत्म मनोहर।''

10.3.5 नव मानवतावादी दर्शन

यदि पंत–काव्य की दार्शनिकता को किसी एक शीर्षक के माध्यम से कहा जाए तो वह 'नव मानवतावाद' कहलाएगा। मानवतावादी वे हमेशा रहे, लेकिन बाद की रचनाओं में नए मनुष्य और नए समाज को गढ़ने की छटपटाहट उनमें अधिक दिखाई देती है। अनेक जातियों, सम्प्रदायों और धर्मों में बंटे मनुष्य को वे एक नए रूप में देखना चाहते हैं–

''भूखंडों में भग्न, विभाजित बर्हिमुखी युग मानव का मन।

स्थापित स्वार्थों से शत खंडित मानव–आत्मा का हत प्रांगण।

देश–खंड से भू–मानव का परिचय देने का क्या क्षण यह

मानवता में देश जाति हों ली, नए युग का सत्याग्रह।''

'गीत विहग' कविता में उन्होंने स्पष्ट रूप में अपनी विचारधारा को रेखांकित किया है–

''मैं नवमानवता का संदेश सुनाता

स्वाधीन लोक की गौरव गाथा गाता''

चाहे गांधीवादी विचार सूत्र हों या अरविन्द–दर्शन के चिंतन–वे नयी मानवता की प्रतिष्ठा के लिए समर्पित हैं–

''मैं स्वर्गिक शिखरों का वैभव

हूँ लुटा रहा जन धरणी पर

जिसमें जग–जीवन के प्ररोह

नव–मानवता में उठें निखर!''

उनकी बहुत बाद की 'गीतिकार' शीर्षक कविता में उनका संकेत है कि मानव जीवन के नवनिर्माण में 'ध्वंस' की भूमिका नहीं होगी–

''मैं न ध्वंस करने आया हूँ

था मानव जीवन ही खंडित

उसे पूर्ण, पूर्णतम बनाने

आया हूँ– कर नव संयोजित''

इन सभी अवतरणों से लगता है कि 'मनुष्य' ही पंत जी के चिंतन के केन्द्र में है। वे आज के दुख–दग्ध मानव की स्थिति देखकर स्वयं संतप्त होते हैं और नए मानव की रचना के लिए दृढ़–संकल्प लगते हैं। उनके नए मानवतावाद में मनुष्य के आर्थिक–सामाजिक विकास के साथ उसके सांस्कृतिक उन्नयन की अपेक्षा भी निहित है। डॉ. किरण गर्ग के शब्दों में– ''मानव जीवन के जिस सांस्कृतिक विकास का स्वप्न पंत जी देखा करते थे, वह उनके विचार से अपने आप में सर्वथा नवीन था और विश्व के ऐतिहासिक विकास के आगामी चरण के रूप में प्रकट होने वाला था। डॉ. हरिवंश राय 'बच्चन' ने एक स्थान पर लिखा है– ''कवि पंत के पीछे एक दिव्य संत और पंत के पीछे एक सरस कवि बैठा हुआ है। इसी संयोग ने उनकी सरसता को उच्छृंखल और उनकी साधना को शुष्क होने से बचा लिया है।'' संतत्व अर्थात् चिंतन, सरसता अर्थात् संवेदनशीलता की संश्लिष्टता पंत–काव्य की खास विशेषता है।

10.4 निष्कर्ष

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि पंत की काव्य–साधना के प्रथम दौर में 'संवेदना' दर्शन पर हावी रही है। उनका परवर्ती काव्य अधिक बौद्धिक और दार्शनिक है। पंत जी के काव्य के संदर्भ में ही रामधारी सिंह 'दिनकर' ने कभी लिखा था कि सरस्वती की जवानी कविता और बुढ़ापा दर्शन है। पंत जी ने अपनी वृद्धावस्था में निश्चय ही चिंतन–प्रधान रचनाएँ रची है। लेकिन उनके चिंतन, उनकी दार्शनिकता ने उनकी कविता को संवेदनहीन नहीं बनाया है, बल्कि उनकी दार्शनिकता ने उनके काव्य को ठोस और दीर्घजीवी बनाने में बहुत सहायता की है।

10.5 कठिन शब्द

1. आत्मसात्
2. सामयिक
3. मिथ्या
4. लय
5. स्वीकारोक्ति
6. मनोभाव

7. पक्षधरता

8. आश्वस्त

9. वास्तविकता

10. समतामूलक

11. अन्तश्चेतना

12. उच्छृंखल

13. दीर्घजीवी

14. संश्लिष्टता

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. सुमित्रानंदन पंत की दार्शनिक चेतना सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र०2. सुमित्रानंदन पंत के अरविन्द दर्शन सम्बन्धी विचारों पर टिप्पणी कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०3. पंत का मार्क्सवादी दृष्टिकोण स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०4. पंत के मानवतावादी दृष्टिकोण पर आलेख लिखिए।

_____

_____

_____

10.7 पठनीय पुस्तकें

1. डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय– पंतजी का नूतन काव्य और दर्शन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1969
2. विनयकुमार शर्मा– युग कवि पंत की काव्य साधना, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली 1959
3. डॉ. शिवनन्दन प्रसाद– सुमित्रानंदन पंत और उनका प्रतिनिधि काव्य, सामयिक प्रकाशन, कानपुर, 1973
4. रमेशचन्द्र शाह– छायावाद की प्रासंगिकता, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1973
5. डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित– छायावादी कवियों का सौन्दर्यविधान, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 1969

.....

सुमित्रानंदन पंत का काव्य–शिल्प

11.0 रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 सुमित्रानंदन पंत का काव्य–शिल्प

11.3.1 जीवंत भाषा

11.3.2 सहज छंद–विधान

11.3.3 नव्य अलंकरण

11.3.4 रम्य बिम्ब–विधान

11.3.5 विविध कथन–शैलियाँ

11.4 निष्कर्ष

11.5 कठिन शब्द

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.7 पठनीय पुस्तकें

11.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे–

– छायावादी काव्यधारा में सुमित्रानंदन पंत का काव्य–शिल्प

– पंत की भाषा, अलंकार, छंद संबंधी विचारों को जान पायेंगे।

– पंत जी ने अपने काव्य में किन कथन–शैलियों का प्रयोग किया है इसे जानेंगे।

11.2 प्रस्तावना

सुमित्रानंदन पंत कल्पना के सुकोमल कवि के रूप में जाने जाते हैं। छायावादी कवियों में सुमित्रानंदन पंत अभिव्यंजना के प्रति सर्वाधिक सचेत कवि माने गए हैं। इनकी भाषा सहज छंद–विधान, नव्य अलंकरण, रम्य बिम्ब–विधान और विविध कथन शैलियों से युक्त है। पंत जी ने 'पल्लव' की भूमिका में भाषा, छंद आदि पर विचार किया है। इस भूमिका का अध्ययन करने के पश्चात् हमें ज्ञात होता है कि पंत जी अपनी अभिव्यंजना को संप्रेषणीय और प्रखर बनाने के लिए बहुत सचेत और सक्रिय कवि के रूप में जाने जाते हैं।

11.3 पंत का काव्य शिल्प

पंत जी जहाँ कल्पना के सुकुमार कवि के रूप में जाने जाते हैं, उनका वैचारिक विकास आलोचकों को आकर्षित करता रहा है, वहीं उनका काव्य–शिल्प भी अनूठा और मौलिक है। द्विवेदी युग की इतिवृतात्मकता और सपाट कथन–शैली के विरोध में छायावादियों ने भाषा, छंद, अलंकार आदि सभी स्तरों पर नए–नए प्रयोग किए। छायावादी कवियों में सुमित्रानंदन पंत अभिव्यंजना के प्रति सर्वाधिक सचेत कवि माने गए हैं। पंत काव्य के शिल्प–विधान को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत मूल्यांकित किया जा सकता है–

11.3.1 जीवंत भाषा

11.3.2 सहज छंद–विधान

11.3.3 नव्य अलंकरण

11.3.4 रम्य बिम्ब–विधान

11.3.5 विविध कथन–शैलियाँ

पंत जी ने 'पल्लव' की विस्तृत भूमिका में भाषा, छंद, कथन–प्रणाली आदि पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। इस भूमिका से स्पष्ट होता है कि अपनी अभिव्यंजना को संप्रेषणीय और प्रखर बनाने के लिए वे बहुत सचेत और सक्रिय रहे थे।

11.3.1 जीवंत भाषा

ब्रज भाषा को लेकर पंत जी बहुत आश्वस्त नहीं थे। उन्हें लगता था कि इसमें दर्शन, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, राजनीति को व्यक्त करने की क्षमता नहीं थी। खड़ी बोली की कविता–भाषा का जो रूप द्विवेदी युग में था वह भी उन्हें संतोष नहीं दे पा रहा था। अतः उन्होंने भाषा संबंधी अनेक प्रयोग किए और खड़ी बोली को काव्य रचना में सक्षम भाषा

के रूप में स्थापित किया। 'रश्मिबंध' के 'परिदर्शन' में उनका कथन है– ''खड़ी बोली जागरण की चेतना थी। द्विवेदी युग जिस जागरण का आरंभ था, हमारा युग उसके विकास का सभारंभ था। छायावाद के शिल्प कक्ष में खड़ी बोली ने धीरे–धीरे सौन्दर्य–बोध, पद–मार्दव तथा भाव–गौरव प्राप्त कर प्रथम बार 'काव्योचित भाषा' का सिंहासन ग्रहण किया।''

'पल्लव' की भूमिका से पता चलता है कि शब्दों को लेकर पंत जी कितने सावधान थे। हवा के कई पर्यायवाची शब्द हैं। पंत जी समझाते हैं कि 'अनिल' में कोमल शीतलता है, 'वायु' में निर्मलता है, 'प्रभंजन' में तीव्र गति है, 'पवन' रूकी हुई हवा का बोध करता है और 'समीर' लहराता हुआ चलता है। स्पष्ट है कि इतनी सूक्ष्म समझ रखने वाले कवि के भाषा–प्रयोग सावधानी से प्रेरित होंगे। 'हवा' के पर्यायवाची शब्दों के उनके कुछ प्रयोग इस संदर्भ में दृष्टव्य हैं। जहाँ नायक–नायिका का मिलन क्षण है, वहाँ 'अनिल' का प्रयोग है– 'अनिल की ध्वनि में सलिल की वीचि में'। तेज हवा के लिए 'प्रभंजन' शब्द का प्रयोग है– 'गाता कभी गरजता भीषण। वन वन उपवन पवन प्रभंजन' इसी प्रकार 'समीर' और 'समीर' के प्रयोग दृष्टव्य हैं–

क) शून्य भरता समीर निश्वास

ख) आज जाने कैसी वातास

छोड़ती सौरभ लय उच्छवास

पंत जी के शब्द–संसार को देखने पर ज्ञात होता है कि भाषा को लेकर कोई अतिवादी दृष्टिकोण उनका नहीं था। वे तत्सम प्रधान भाषा भी लिखते थे और एकदम साधारण बोलचाल की भाषा भी उनकी कविताओं में मिलती है। एक ओर 'स्वर्ण', 'अलक्षित', 'गुरूतर', 'संसृति', 'शास्ति', 'साम्राज्य', 'ज्योतिष', जैसे तत्सम शब्द उपलब्ध हैं तो दूसरी ओर 'गुदबदे', 'सिड़ी', 'चमड़ी', 'कमठा', 'झांझर' आदि देशज शब्द भी यथा–स्थान मिलते हैं। एक ही कविता में भाव और स्थिति के अनुरूप शब्दावली में परिवर्तन उनकी 'बादल', 'परिवर्तन' आदि कविताओं में दिखाई देता है। 'परिवर्तन' कविता में करुणा विगलित क्षणों की भाषा माधुर्य गुण से संश्लिष्ट है–

''अभी तो मुकुट बंधा था माथ

हुए कल ही हल्दी के हाथ,

खुले भी न थे लाज के बोल

खिले भी चुम्बन–शून्य कपोल

हाय, रूक गया वहीं संसार

बना सिंदूर अँगार''

इसी कविता में ध्वंस का चित्रण करने वाली भाषा का स्वरूप इस प्रकार है–

''लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर

छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षः स्थल पर।''

'लोकायतन' आदि परिवर्ती कृतियों में परिवेश और पात्र के अनुरूप भाषा का स्वरूप साधारण बोलचाल का है।

''पारसाल ही तो घर लाया

रंजन नयी वधू कर

दुखिया का सिंदूर लुट गया

उसे देख आँखें आती भर''

'ग्राम्या' में पंत जी ने अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी किया है। अनेक स्थल पर अंग्रेजी शब्दों के अनुवाद सरीखे शब्द उपलब्ध हैं। 'अनुवादित', 'रेखांकित', 'स्वप्निल मुस्कान' आदि 'शब्द' ट्रांसलेटेड, अंडर लाइन्ड, ड्रीमी स्माइल आदि अनुवाद प्रतीत होते हैं।

नाद सौन्दर्य और लाक्षणिकता–पंत काव्य की भाषा की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। वे वर्ण मैत्री के द्वारा 'लयात्मकता' की सृष्टि करने में सफल होते हैं–

1) मृदु–मंद मंथर–मंथर

2) झम झम झम झम मेघ बरसते हैं सावन के

छमछम छम गिरती बूँदें तरुओं से छनके।

लाक्षणिक भाषा प्रयोगों से पूरा पंत काव्य भरा पड़ा है। जहाँ मुख्य अर्थ के ग्रहण में बाधा होती है और रूढ़ि अथवा प्रयोजन की सहायता से पाठक अर्थ तक पहुँचता है, वहाँ लक्षणा शब्द शक्ति मानी जाती है। उनकी प्रथम प्रसिद्ध कविता 'प्रथम रश्मि' के प्रारम्भ में ही लक्षणा का सहारा लेना पड़ता है–

''सोयी थी तू स्वप्न नीड़ में

पंखों के सुख में छिपकर

झूम रहे थे, घूम द्वार पर

प्रहरी से जुगनू नाना''

बादल, परिवर्तन, नौका विहार आदि कविताओं की तो सारी शक्ति ही लक्षणा पर निर्भर है। लेकिन पंत की यह विशेषता है कि उनके लाक्षणिक प्रयोग दुरुह और क्लिष्ट नहीं है। थोड़े से प्रयास के बाद पाठक उनके अभीष्ट अर्थ तक पहुँच जाता है। उदाहरण के लिए चारों ओर व्याप्त शोषण, लूट और भ्रष्टाचार की प्रतीति 'परिवर्तन' कविता की इन पंक्तियों में उलझी हुई या अस्पष्ट नहीं है–

''सकल रोओं से हाथ पसार

लूटता इधर लोभ गृह–द्वार

उधर वामन डग स्वेच्छाचार

नापती जगती का विस्तार''

इस तरह स्पष्ट है कि पंत जी जहाँ भाषा को एक नया रूप देने के लिए प्रयास कर रहे थे, वहीं संप्रेषण की समस्या से अनजान नहीं थे। 'ग्राम्या', 'युगवाणी' आदि में लक्षणा की सहायता उन्होंने कम ली है, लेकिन फिर बाद की कृतियों में लक्षणा ही उनकी भाषा की प्रमुख शब्द–शक्ति बनी हुई है। लोकोक्तियों और मुहावरों में भी लक्षणा विद्यमान होती है। इस रूप में भी लक्षणा के कई उदाहरण पंत–काव्य में उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ–

क) आठ आँसू रोते निरूपाय

ख) साँप लोटते फटती छाती

ग) कैसे उलझा हूँ लोचन

पंत काव्य के प्रथम दौर में जहाँ भाषा के स्तर पर कोमल कांत पदावली और चित्रमयता है, वहीं दूसरे दौर में भाषा जीवन–यथार्थ के बहुत निकट है। लेकिन तीसरे दौर के स्वर्ण–काव्य की भाषा, जटिल, दुरूह और प्रतीकात्मक है। अतः सामान्य पाठक को अर्थ–ग्रहण में कठिनाई होती है। 'कला और बूढ़ा चाँद' जैसी अंतिम दौर की कविताओं में भाषा बोलती कम है, अर्थ की व्यंजना अधिक होती है। कवि की प्रतिज्ञा है–

''मैं शब्दों की

इकाइयों को रौंद कर

संकेतों में

प्रतीकों में बोलूँगा

उनके पंखों को/असीम के पार फैलाऊँगा।''

लेकिन प्रतीकों–संकेतों की उपस्थिति के बावजूद इस दौर की कविताओं में अस्पष्टता या उलझाव नहीं है। कुछ कविताओं में मोर, बिल्ली और कौए के माध्यम से आज की विसंगतियों पर अच्छे व्यंग्य किए गए हैं।

11.3.2 सहज छंद–विधान

'रश्मि बंध' की भूमिका 'परिदर्शन' में पंत जी का कथन है– ''छायावादी कवियों ने छंदों में मात्राओं से अधिक महत्व उसके प्रसार तथा स्वर–संगति को दिया। उन्होंने कई प्रचलित छंदों को अपनाते हुए भी, उनके पटि–पिटाए यति–गति में बंधे रूप को स्वीकार न कर उनमें प्रसार की दृष्टि से नए प्रयोग कर दिखाए।'' छंदों के विधान में यह शिथिलता एक तरह से कविता की बंधनों से मुक्ति का प्रारंभ था–

''खुल गए छंद के बंध

प्रास के रजत पाश

अब गीत मुक्त

औ युग वाणी बहती अयास।''

'प्रथम रश्मि' शीर्षक कविता में पंत जी ने 'कुकुभ' छंद के अर्धसम रूप का प्रयोग किया है। 'ग्रंथि' में 'पीयूष वर्ष' छंद का उपयोग है। 'पल्लव' में 'श्रृंगार' और 'वीर' छंदों की प्रमुखता है। 'गुंजन' में उन्होंने प्राचीन छंद 'रूपमाला' का प्रयोग पहली बार किया है। कई स्थलों पर परम्परागत छंदों को किंचित् संशोधन के साथ रखा गया है। उदाहरण के लिए 'पर्वत प्रदेश' में 'पावस' की निम्नलिखित पंक्तियों में 'पद्धरि' का प्रयोग है–

''मेखलाकार पर्वत अपार

अपने सहस्त्र दृग सुमन फाड़

अवलोक रहा है बार–बार

नीचे जल में निज महाकार''

परम्परागत छंदों को लेकर पंत जी ने निरन्तर प्रयोग किए हैं। 'परिवर्तन' कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में प्रथम दो चरण 'गोपी' छंद के हैं और अंतिम दो चरण 'श्रृंगार' छंद में रचित हैं–

''खोलता उधर जन्म लोचन

मूँदती उधर मृत्यु क्षण–क्षण

अभी उत्सव औ हास–हुलास

भी अवसाद, अश्रु उच्छवास।''

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि उनका छंद–विधान शास्त्र की रूढ़ि से मुक्त और सहज है। 'कला और बूढ़ा चाँद' में मुक्त छंद पर उनका अधिकार प्रमाणित होता है। डॉ. श्याम गुप्त ने उनके छंद विधान की उपलब्धि पर लिखा है– ''कवि ने छंदों को अपनी अँगुलियों पर नचाने के पूर्व अथक साधना की। इसी साधना का यह परिणाम है कि छंद उनके सामने हाथ जोड़े दिखायी देते हैं, लगता है छंद कवि के इशारा करने के पूर्व ही अभीष्ट कार्य संपादित कर उनका विश्वास पात्र बनना चाहते हैं।

11.3.3 नव्य अलंकरण

पंत जी के शब्दों में– ''अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं हैं वरन भाव अभिव्यक्ति के भी विशेष द्वार है।'' इस कथन से स्पष्ट है कि पंत जी रीतिकालीन मानसिकता से अलग हटकर अलंकार का समावेश करते हैं। अलंकार उनके लिए 'साध्य' न होकर साधन हैं। अलंकरण, पंत काव्य में दो रूप में उपलब्ध हैं। एक ओर रूपक, उपमान, उत्प्रेक्षा आदि समतामूलक अलंकारों के प्रयोग हैं, जिनमें उपमान परम्परागत और नवीन दोनों प्रकार के हैं। दूसरी ओर एकदम नए विशेषण–विपर्यय, मानवीकरण आदि अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। उपमा, रूपक पंत जी को बहुत प्रिय है। 'परिवर्तन' में उन्होंने एक प्रभावशाली सांगरूपक की योजना की है–

''अहे वासुकि सहस्त्र–फन

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर

छोड़ रहे हैं जगती के वक्षः स्थल पर

———————

अखिल विश्व की विवर

वक्र कुंडल

दिग् मंडल''

'छाया', 'बादल' आदि कविताओं में उपमाओं की भरमार सी है। लेकिन वे पिष्टपेषित नहीं होकर नवीन और साभिप्राय हैं। बादल के मधुर–भयावह रूपों की अभिव्यक्ति के लिए जहाँ–तहाँ उपयुक्त अप्रस्तुत प्रयुक्त हैं। भयानक रूप की प्रस्तुति इस प्रकार हुई है–

''कभी अचानक भूतों का सा

पकटा विकटा महा आकार''

जहाँ उनका सौम्य रूप है, वहाँ परियों के बच्चों को अप्रस्तुत बनाया गया है–

''फिर परियों के बच्चों से हम

सुगम सीप के पंख पसार''

साहचर्य मूलक या शब्दालंकारों के प्रयोग भी पंतकाव्य में कम नहीं है। लेकिन चमत्कार पैदा करने के बजाय शब्द मैत्री के द्वारा सौन्दर्य उत्पन्न कर देना पंत जी को अधिक प्रिय है। इसलिए वीप्सा, पुनरूक्ति प्रकाश, अनुप्रास आदि उनके काव्य में अत्यंत सहज भाव से आए हैं। 'वह मधुर मधुमास था', 'सुधामय सांसों में उपचार', 'मृदु–मृदु स्वप्नों से, मृदु मंद मंद मंथर मंथर' आदि उद्धरण उदाहरण स्वरूप देखे जा सकते हैं। 'यमक' का प्रयोग 'ग्रंथि' में मिलता है–

तरणि के ही संग तरल तरंग में

तरणि डूबी थी हमारी ताल में

पंत जी ने अनेक ऐसे उपमानों का प्रयोग किया है जो सूक्ष्म हैं लेकिन अर्थग्रहण में बाधक नहीं होते। जैसे– विधुर उर के से मृदु उदगार, आकांक्षा का उच्छावसित वेग, चिर आकांक्षा की तीक्ष्ण धार' आदि 'मानवीकरण' अलंकार का पंत ने सर्वाधिक प्रयोग किया है। इनकी प्रसिद्ध कविता 'संध्या' विशेष रूप से दृष्टव्य है–

कहो, तुम रूपसि कौन

व्योम से उतर रही चुपचाप

छिपी निज छाया छवि में आप

यहाँ संध्या का मानवीकरण है। विशेषण विपर्यय भी जहाँ–तहाँ मिलता है– 'आह! वह मेरा गीला गान'। इन नए–नए अलंकारों की उपस्थिति में भी पंत की कविता पारदर्शी और ग्राह्य बनी रहती है, यह बड़ी बात है।

11.3.4 रम्य बिम्ब–विधान

अर्थ–ग्रहण के साथ–साथ बिम्ब–ग्रहण कराना भी अच्छे कवि का गुण माना गया है। पंत जी सदैव बिम्बों–विशेषतः प्राकृतिक बिम्बों के माध्यम से अपना अभिप्राय व्यक्त करते रहे हैं। उनकी कविता में चाक्षु बिम्बों की प्रधानता है, लेकिन श्रव्य, स्पृश्य आदि बिम्बों का अभाव नहीं है। प्राकृतिक तत्वों में प्रकाश, जल और वायु से संबंधित बिम्ब बराबर ध्यान आकर्षित करते हैं। कुछ उदाहरण प्रमाण–स्वरूप देख सकते हैं–

1) दूध धुली–ऊनी भापों की

किरणों की भेड़ें हिम चरती (चाक्षुष बिम्ब, प्रकाश बिम्ब)

2) बुलबुलों का व्याकुल संसार (जल बिम्ब)

3) वह छवि की छुई मुई सी

मृदु मधुर लाज से मर–मर (स्पर्श बिम्ब)

'नौका विहार' में एक घरेलू बिम्ब बहुत मार्मिक ढंग से चित्रित हुआ है–

माँ के उर पर शिशु सा–समीप

सोया धारा में एक दीप

पंत–काव्य में जहाँ मनोहर और मार्मिक बिम्बों की योजना हुई है, वहीं वस्तुस्थिति की कठोरता को दिखने वाले भयावह बिम्बों की भी कमी नहीं है। 'परिवर्तन' कविता का एक बिम्ब दर्शनीय है–

'तुम्हीं स्वेद–सिंचित संसृति के स्वर्ण शस्य दल

दलमल देते, वर्षोंपल बन, वांछित कृषिफल।'

हथेली पर मुख टिकाए युवती का बिम्ब पंत को बहुत प्रिय है। इसका उन्होंने कई कविताओं में प्रयोग किया है। जैसे 'नौका विहार' में 'शशि मुख से दीपित करतल' है और एक अन्य कविता में शारदा की भंगिमा कुछ इसी प्रकार की है–

मृदु करतल पर शशि मुख घर

नीरव अनिमिष एकाकिनि

ये सभी बिम्ब कवि के अभिव्यंजना–कौशल का प्रमाण देते हैं।

11.3.5 विधि कथन–शैलियाँ

पंत–काव्य की कथन–पद्धतियाँ वैविध्यपूर्ण हैं। पंत जी जिस कुशलता से लघु कविता लिखते हैं, उतने ही कौशल से लम्बी कविता की रचना करते हैं। यदि मुक्तक काव्य पर उनकी पकड़ है तो 'लोकायतन' और 'सत्यकाम' में वे प्रबंध रचना में पटुता का प्रमाण देते हैं। उनकी 'ताज', 'बापू', 'स्वप्न–कल्पना' आदि कविताएँ छोटे–छोटे आकार की हैं और अपने आप में पूर्ण हैं। 'परिवर्तन' लम्बी कविता है। डॉ. नरेन्द्र मोहन के अनुसाार ''यह कविता कालक्रम की दृष्टि से ही नहीं, अपने विन्यास की दृष्टि से भी हिन्दी की पहली लम्बी कविता मानी जा सकती है।' लंबी कविता में कोई केन्द्रीय स्थिति होती है, जिसे बिम्बों और विचारों की लड़ी बनाकर प्रस्तुत करते चलते हैं। 'परिवर्तन' में मानव जीवन में सुख सरसों के बराबर और दुख सुमेरू पर्वत के बराबर होने का केन्द्रीय भाव बहुत कुशलता से व्यक्त हुआ है। 'ग्रंथि' में सूक्ष्म कथा तत्व के सहारे प्रेमानुभूति का अंकन है और 'लोकायतन' में प्रबंध रचना को नया रूप देने का प्रयास है। लेकिन न तो कथ्य और न शिल्प की दृष्टि से पंत जी के महाकाव्य कुछ नया रच पाए हैं। 'रश्मि' में चिंतन का योग है। यहाँ आकुलता का स्थान विश्वास ने ले लिया है। यहाँ चिंतन की दिशा सुनिश्चित होती है। वे जग के दुःख–दर्द से जुड़ती दिखाई पड़ती हैं–

कह दे माँ अब क्या देखूँ

देखूँ खिलती कलियाँ या

प्यासे सूखे अधरों को

तेरी चिर यौवन सुषमा

जा जर्जर जीवन देखूँ?

शैलियाँ कोई सी भी हों, पंत जी ने उनमें काव्यत्व की रक्षा भली भाँति की है।

11.4 निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भाषा, छंद, अलंकार, बिम्ब, कथन पद्धति आदि सभी स्तरों पर पंत जी का काव्य श्रेष्ठ है। उन्होंने शिल्प पक्ष पर बहुत श्रम किया है। इसलिए भाषा प्रयोगों को लेकर वहाँ सावधानी मिलती है और अर्थ–सौन्दर्य बढ़ता गया है। छंद–विधान को नया और आकर्षक बनाने के लिए सावधानी मिलती है और अर्थ–सौन्दर्य बढ़ता गया है। छंद–विधान को नया और आकर्षक बनाने के लिए वे सतत् प्रयास करते रहे। उनकी कविता जितनी वैचारिक–संवेदनात्मक रूप से उल्लेखनीय है, उतनी ही उसकी प्रस्तुति भी आकर्षक है। प्राकृतिक अप्रस्तुतों और बिम्बों की छटा पूरे पंत–काव्य में हैं। अपनी लम्बी काव्य यात्रा में पंत जी निरन्तर प्रयोगशील रहे हैं। भाषा, छंद आदि के क्षेत्र में नए प्रयोग करते हुए अपनी अभिव्यक्ति को नया रूप देने को वे निरंतर प्रयासरत रहे। मुक्तक रचना, गीति–रचना से लेकर प्रबंध–शिल्प तक में वे अपनी निपुणता दिखाते हैं। समग्रतः उनका काव्य–शिल्प बहु प्रौढ़ और प्रभावशाली है।

11.5 कठिन शब्द

1. सुनिश्चित
2. आकुलता
3. निरंतर
4. अभिव्यक्ति
5. वैचारिक
6. अभिप्राय
7. आकांक्षा
8. अलक्षित
9. साहचर्य
10. पिष्टपेषित

11. शब्दमैत्री

12. अभीष्ट

13. शिथिलता

14. संप्रेषण

15. दुरूह

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. सुमित्रानंदन पंत के काव्य–शिल्प पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र०2. पंत की विविध कथन शैलियों पर टिप्पणी कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०3. पंत की अभिव्यंजना शैली को विवेचित कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०4. पंत की लक्षणा–शैली पर टिप्पणी कीजिए।

_____

_____

_____

11.7 पठनीय पुस्तकें

1. प्रतिभा कृष्णबल – छायावाद का काव्य–शिल्प, राधाकरण प्रकाशन, दिल्ली, 1962
2. नामवर सिंह– छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
3. डॉ. नगेन्द्र– सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1953
4. डॉ. नगेन्द्र– हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1982
5. विनयकुमार शर्मा– युग कवि पंत की काव्य साधना, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली 1959
6. डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित– छायावादी कवियों का सौन्दर्यविधान, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1969

.....

महादेवी वर्मा की गीति विशेषताएँ

12.0 रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 गीति काव्य : परिभाषा

12.4 मुक्तक, गीत एवं प्रगीत

12.5 हिन्दी गीति काव्य परम्परा

12.6 महादेवी वर्मा की गीति विशेषताएं

12.6.1 वैयक्तिकता

12.6.2 विश्व के प्रति करुणा भाव

12.6.3 भाव–प्रवणता एवं अन्तः स्फूर्ति

12.6.4 गेयता या संगीतात्मकता

12.6.5 संक्षिप्तता

12.6.6 भाषा–शैली

12.7 सारांश

12.8 कठिन शब्द

12.9 अभ्यासार्थ शब्द

12.10 संदर्भ ग्रन्थ

12.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप

(1) गीति काव्य के अर्थ से अवगत होते हुए मुक्तक, गीत एवं प्रगीत में अन्तर जान पाएंगे।

(2) हिन्दी गीति काव्य परम्परा से परिचित होंगे।

(3) महादेवी वर्मा की गीति विशेषताओं से अवगत होंगे।

12.2 प्रस्तावना

गाने योग्य की गई पद–रचना का नाम 'गीतिकाव्य' है। काव्य–शास्त्रियों द्वारा काव्य कें 'प्रबन्ध' और 'मुक्तक' जो दो भेद किए गए हैं, उनमें 'गीतिकाव्य' 'मुक्तक' वर्ग में आता है। कथाहीन या प्रबन्धहीन मुक्तक–काव्य का एक 'सूक्ति' पक्ष होता है, दूसरा 'संगीत' पक्ष। 'सूक्ति' का चलता अर्थ कोई 'अच्छी बात' या उपदेश है और गीति का अर्थ है 'गाया गया' या गाने योग्य जिसे 'गेयपद' भी कहा जाता है। सूक्ति का सम्बन्ध मानव–मस्तिष्क या उसके 'आचार' पक्ष से रहता है, किन्तु गीत का सीधा सम्बन्ध उसके हृदय या भावनाओं से है। संगीत या गेय पदों की रचना कवि के अत्यंत भाव–विभोर क्षणों में होती है। अतः उसके प्राणों का यह संगीत या 'हृदय का तरंगण' सुनने (या पढ़ने) वालों के हृदयों को भी तरंगित किए बिना नहीं रहता। आधुनिक गीतिकाव्य में भक्ति साहित्य के कवि व गीतिकाव्य अंग्रेजी के 'Lirical Poetry' के सामान्तर है। अंग्रेजी का लिरिकल (Lyrical) शब्द 'लिरिक' (Lyric) से और लिरिक (Lyric) 'लायर' (Lyre) से विकसित हुआ है। लोयर एक प्रकार का वाद्ययंत्र होता है जिसे बजाने के साथ–साथ कुछ गाया भी जाता है। प्रारम्भ में लोयर के साथ गाने वाले गीतों को 'लिरिक' कहा गया परन्तु बाद में यह आवश्यक नहीं रहा कि लिरिक को लायर के साथ ही गाया जाये। परन्तु लिरिकल पोइट्री या गीतिकाव्य के लिए गेयता एक आवश्यक गुण माना गया है।

12.3 महादेवी वर्मा की गीति विशेषताएं गीति काव्य परिभाषा

पाश्चात्य कवि वर्ड्सवर्थ ने गीतिकाव्य की परिभाषा 'कवि के सशक्त भावों का उद्वेग' (the spontaneous overflow of powerful emotions) कह कर की है। स्वयं महादेवी के शब्दों ''गीतिकाव्य कवि की सुख–दुखात्मक अनुभूति का वह 'शब्द–रुप' है जो अपनी ध्वन्यात्मकता से 'गेय' हो सके।'' गीति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है– ''गीत का चिरंतन विषय रागात्मक वृत्ति से सम्बन्ध रखने वाली सुख–दुखात्मक अनुभूति से रहेगा।''

इसी को डॉ॰ नगेन्द्र ने इन शब्दों में परिभाषित किया है – ''गीत मानव के हर्ष –विषाद का सहज वाहक है जो अब तक अपनी परिभाषा को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं।''

डॉ॰ विजयेन्द्र स्नातक के कथनानुसार – ''अपने हृदय के हर्ष –विषाद प्रकट करने के लिए गीत एक ऐसा सरस माध्यम है जिसमें हमारी भावना और अनुभूति को प्रतिफलित होने का पर्याप्त अवकाश मिलता है।''

12.4 मुक्तक गीत एवं प्रगीत

पुराने मुक्तक से आधुनिक मुक्तक कविता को अलगाने के लिए प्रगीत अथवा लिरिक शब्द का प्रयोग किया गया। छायावादी आलोचकों ने सभी छायावादी मुक्तकों के लिए 'प्रगीत' शब्द का प्रयोग किया है। ये प्रगीत भाव तथा रूप में मध्ययुगीन मुक्तकों से भिन्न हैं। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने प्राचीन मुक्तक और आधुनिक प्रगीत के अन्तर को बताते हुए कहा है – प्राचीन मुक्तकों में कवि को कल्पना कुछ ऐसे शास्त्ररूढ़ व्यापारों की योजना करती थी जिनसे किसी रस या भाव की व्यंजना मुखर हो। आधुनिक प्रगीत मुक्तक कवि के भावावेग के महत क्षणों की रचना होते हैं। उनमें गीत की सहज और हल्की गति होती है। इनकी गुलदस्ता के साथ तुलना नहीं की जा सकती। ये विच्छिन्न जीवन–चित्र होने पर भी प्रवाहशील होते हैं और इनमें शास्त्र–रूढ व्यापार योजन की आवश्यकता नहीं होती। पुराने रूपकों में कवि कल्पना की समाहार शक्ति प्रधान हिस्सा लेती थी, पर आधुनिक मुक्तकों में कवि का भावावेग ही प्रधान होता है। प्राचीन मुक्तक छन्द के रूढ़ ढाँचे में ढले होते थे। उनमें भावावेग का उतना महत्त्व नहीं था। छन्द के अनुसार भाव अभिव्यक्त किये जाते थे। आधुनिक प्रगीतों में भावावेग का महत्त्व है। भाव के अनुसार गीत के चरण छोटे–बड़े, अधिक तथा कम किये जाते हैं। छायावादी युग में प्रगीत अधिक लिखे गए हैं। यह उस युग की प्रवृति थी। गीत, काव्य और संगीत दोनों की सम्मिलित भूमिका पर अवस्थित होता है। प्रगीत में भाव सघनता व रस प्रवाह का उतना दर्शन नहीं होता जितना कल्पना–वैचित्र्य और कलात्मक सौष्ठव का। वह काव्य के अधिक निकट होता है, संगीत के उतना नहीं। छोटी रचना गीत कहलाती है, टेक और अन्तरा तो गेयता के अनुरोध के बाद में गीतों में लाये गये। महादेवी वर्मा के काव्य में वस्तु या विषय प्रधान कविताओं का निर्माण कम हुआ है, आत्मगत प्रधान गीतों की सृष्टि अधिक हुई है। अतः महादेवी वर्मा का काव्य गीति की कोटि में आता है।

12.5 हिन्दी गीति काव्य परम्परा

काव्य से संगीत का संयोग तो वैदिक काल में हो गया था। परन्तु आज का हिन्दी गीति काव्य उस परम्परा में आता है जिसका पहला स्वर विद्यापति ठाकुर के कंठ से फूटा था। विद्यापति की परम्परा में ही सूर एवं तुलसी आते हैं किन्तु इससे पहले कुछ काल तक हिन्दी जगत कबीर भजनों और सूफियों के कथा संगीत से गूँजता रहा। सूर एवं तुलसी दोनों शास्त्रीय संगीत के ज्ञाता और भक्त दार्शनिक थे। दोनों ने शुद्ध शास्त्रीय संगीत के आधार पर गीतिकाव्य की सृष्टि की। रीतिकाल में सामंतों की छत्रछाया में शास्त्रीय संगीत को तो प्रोत्साहन मिला किन्तु अपनी भावहीनता के कारण रीतिकालीन काव्य संगीतमय न हो सका।

आधुनिक काल का आरम्भ राष्ट्रीय चेतना के जागरण के साथ हुआ। श्रृंगारिक–काव्य का स्थान सुधारवादी काव्य ने लिया और गीतों का क्षेत्र 'भक्ति' में बदल कर राष्ट्रीय हो गया। जयशंकर प्रसाद ने साहित्यिक गीतों की नई परम्परा चलाई। छायावाद और 'नवोदित रहस्यवाद' ने हिन्दी–गीति को नई दिशा दिखाई। इन गीतों में परम्परागत भक्ति–संगीत की अपेक्षा पाश्चात्य 'लिरिक' का प्रभाव और अनुकरण अधिक था। प्रकृति का स्वाभाविक संगीत, निर्झर–कल–गान, पक्षियों का कलरव, पवन की सनसनाहट, पत्तों का मर्मर–संगीत और उषा–संध्या की प्राकृतिक रागनिओं के स्वर इस गीतिकाव्य में अधिक मुखरित रहे। हरिवंश राय बच्चन के 'हालावाद' और 'रोमांस' ने हिन्दी गीतों को लोकप्रियता प्रदान की। प्रसाद के गीत अपनी गूढ़ता और दुरूहता के कारण साहित्य मर्मज्ञों को आनन्द देते रहे। निराला के गीत अपनी शास्त्रीय संगीतात्मकता, समासबद्ध शैली और भाव जटिलता के कारण उनकी 'गीतिका' तक सीमित रहे। पंत जी के गीत स्वाभाविक स्वर–संधान पाकर भी 'गीत' के आलाप की योग्यता प्राप्त नहीं कर सके। महादेवी वर्मा रचनाकार के साथ–साथ चिंतक भी रही है। भाव और चिंतन के संयोग से निःसृत अपने गीतों की व्यापकता उन्होंने इन शब्दों में स्पष्ट की है– ''इन गीतों में पराविद्या की अपार्थिकता ली, वेदान्त के अध्ययन की छत्रछाया ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य भावसूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य को अवलम्ब दे सका, उसे पार्थिक प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को 'हृदयमय' और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।''

12.6 महादेवी वर्मा की गीति विशेषताएं

महादेवी वर्मा के गीतों में भावात्मकता और कलात्मकता का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। उनमें अनुभूति की तीव्रता नहीं वरन् अनुभूति का संयम है। इनकी गीति विशेषताएं निम्नांकित हैं–

12.6.1 वैयक्तिकता

काव्य और व्यक्तित्व का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। काव्य में व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति दो रूपों में होती है– प्रत्यक्ष रूप में और परोक्ष रूप में। महादेवी वर्मा ने परोक्ष रूप को ही अपनाया है, फिर भी इनके जीवन की अथाह वेदना इनके काव्य में मुखरित हो उठी है जिसके साथ इनके जीवन के सहज ही सम्बद्ध किया जा सकता है। प्रियतम से प्रथम मिलन से लेकर निर्वाण प्राप्ति तक की साधना का अंकन उनके गीतों में मिलता है। प्रिय मिलन की आकांक्षा देखिए–

जो तुम आ जाते एक बार।

कितनी करुणा कितने सन्देश

पथ में बिछ जाते बन पराग।

महादेवी वर्मा को अटल विश्वास है कि –

'तू जल–जल जितना होता क्षय,

वह समीप आता छलनामय।

उनकी 'ज्वलंत साधना' की एकमात्र उपलब्धि है 'प्रिय' का सान्निध्य और उसका साधन है उसके विरह में 'अविराम जलते रहना', निष्कंप दीपशिखा की तरह एक सार.....एक तारा। इसीलिए वह कहती है–

मैं क्यूं पूछूँ यह विरह निशा,

कितनी बीती, क्या शेष रही?

महादेवी वर्मा के अधिकांश गीत 'दीपक' सम्बन्धी हैं जो उनके साधनारत जीवन का प्रतीक हैं। कहीं दीपक उनकी साधना का पथ–प्रदर्शक बन कर 'प्रभात' तक चलने (जलने) वाला सांस का दूत है और कहीं वह स्वयं दीप के दोनों रूपों में निष्कंप जलते रहने के प्रति उनकी प्रबल कामना है.....कामना ही नहीं, उसे जलता रखने के लिए प्रयत्न भी है– मेरे निःश्वासों से द्रुततर,

सुभग न तू बुझने का भय कर,

मैं दृग के अक्षय कोषों से,

ढाल रही नित स्नेह निरन्तर,

सहज–सहज मेरे दीपक जल।

विरह को जी जीवन का ध्येय मानने वाली महादेवी की विरहानुभूति आत्मगत शैली में प्रस्फुटित होती है–

''पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा,

तुमको पीड़ा में ढूँढा तुममें ढूँढूंगी पीड़ा।''

प्रिय–मिलन के लिए अविराम जलना ही महादेवी वर्मा के साधक व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है जो उनके गीतों में प्राण–शक्ति बन कर रह रही हैं।

उन्हीं के शब्दों में – जलना ही प्रकाश, उसमें सुख,

बुझना तो तम है? तम में दुख।

12.6.2 विश्व के प्रति करुणा भाव

महादेवी वर्मा के जीवन में अपने लिए वेदना, किन्तु दूसरों के लिए 'संवेदना' है। दुखी विश्व के प्रति, जीवन–जगत की क्षण–भंगुरता के प्रति और निरीह प्राणियों पर स्वार्थी समाज के अन्याय अत्याचार के विरुद्ध एक सजल करुणा भाव सदैव रहा है–

मत व्यथित हो फूल, किसको सुख दिया संसार ने,

स्वार्थमय सब को बनाया यहाँ कर्तार ने।

उनकी करुणा जहाँ दूसरों के लिए 'संवेदना' है, उनके अपने लिए 'प्रिय' का वरदान है–

बिछाती थी सपनों के जाल,

तुम्हारी वह करुणा की कोर।

इसी 'स्वप्न जाल' में उन्हें प्रिय–दर्शन' होते हैं, उनसे मान–मनौव्वल होता है, चिद–विलास होता है, 'तब वह स्वप्न सत्य' से अधिक विश्वसनीय एवं प्रिय नहीं–

कैसे कहती हो सपना है,

अलि! मूक मिलन की बात,

भरे हुए अब तक फूलों में,

मेरे आँसू, उनका हास।

अतः करुणा स्वयं उनके लिए 'प्रिय' का प्रणयलोक है जिसकी छाया में उन्हें नव दृष्टि भी मिलती है और अपनी भाव–सृष्टि भी।

12.6.3 भाव–प्रवणता एवं अन्तः स्फूर्ति

गीत भावावेश की सहज अभिव्यक्ति होता है। इसलिए इसमें भाव प्रवणता एवं अन्तः स्फूर्ति का आ जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। महादेवी वर्मा के प्रारम्भिक गीतों में भाव–प्रवणता का तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक मिलता है–

1. 'अलि! कैसे उनको पाऊँ?
2. हरसिंगार झरते हैं झर झर आज नयन आते क्यों थर–थर?
3. कैसे कहती हो सपना अलि। उस मूक मिलन की बात,

   भरे हुए अब तक फूलों में उनके आंसू मेरे हास।

महादेवी वर्मा के गीतों में भाव प्रवणता तो है लेकिन भावों की समास अभिव्यक्ति के कारण इनमें उस अन्तः स्फूर्ति का अभाव है जो एक सफल गीत के लिए अपेक्षित है। यथा –

"चिर ध्येय यही जलने का ठंडी विभूति बन जाना?

है पीड़ा की सीमा यह दुख का चिर मुख हो जाना;

मेरे छोटे जीवन में देना न तृप्ति का कण–भर,

रहने दो प्यासी आँखे भरती आँसू के गागर।

ऐसे गीत विश्लेषण–सापेक्ष है और विश्लेषण का आनन्द सदैव भौतिक आनन्द होता है, काव्य का सहज रस नहीं। महादेवी वर्मा के गीतों में भावावेग का अचानक विस्फोट नहीं होता क्योंकि वह भावों का सहृदय–संवेद्य बनाने के लिए भावातिरेक को संयम की परिधि में बाँधना आवश्यक समझती है। इस सम्बन्ध में उनका कहना है –

"दुखातिरेक की अभिव्यक्ति आर्त्तक्रन्दन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है, जिसमें संयम का नितान्त अभाव है, उसकी अभिव्यक्ति नेत्रों के सजल हो जाने में भी है, जिसमें संयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत संयम हो जाने की सम्भावना रहती है, उसका प्रकाशन एक दीर्घ निश्वास में भी है जिसमें संयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नहीं रहने देती और उसका प्रकटीकरण निस्तब्धता द्वारा भी हो सकता है जो निष्क्रिय बन जाती है। वास्तव में गीत के कवि को आर्त्तक्रन्दन के पीछे छिपे दुखातिरेक को दीर्घ विश्वास में छिपे हुए संयम में बाँधना होगा। तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा।

12.6.4 गेयता या संगीतात्मकता

गेयता गीत का प्रमुख तत्व है। महादेवी वर्मा ने गीतों में गेयता का पूरा–पूरा ध्यान रखा है और संगीतात्मकता के सन्दर्भ में डॉ॰ कमलाकांत पाठक का कथन महत्त्वपूर्ण है – "इसमें संगीत का तत्व है अवश्य पर वह प्राथमिक विशेषता नहीं है। यहाँ मुख्य वस्तु है कवि का भावारूप अतः संगीत का मूल्य औपचारिक है। "महादेवी वर्मा के गीतों में लय और गति के साथ अर्थ और ध्वनि का पूर्ण सामंजस्य मिलता है–

"अम्बर गर्वित, हो आया नत,

चिर निस्पन्द हृदय में उसके

उमड़े ही पलकों के सावन,

लाए कौन संदेश नए धन।

मैं पलकों में पाल रही हूँ, यह सपना सुकुमार किसी का। पंक्ति में लयात्मक लम्बाई कवयित्री के चिर–विरह एवं उनकी चिर साधना को साकार कर रही है। इनके अनेक गीतों का वर्ण–विन्यास तो बड़ा ही लयात्मक एवं भावानुरूप है–

सपने जगाती आ।

श्याम अंचल,

स्नेह–उर्म्मिल,

उज्ज्वल

तारकों से चित्र उज्ज्वल

घिर घटा–सी चाप से पुलके उठाती आ !

हर पल खिलाती आ !'

डॉ॰ नगेन्द्र ने महादेवी वर्मा के गीतों की गेयता का विश्लेषण करते हुए लिखा है – 'स्वर तन्त्रियों में गुम्फित कोमल शब्दावली रेशम पर मोती की भाँति ढुलकती जाती है।

12.6.5 संक्षिप्तता

महादेवी वर्मा ने प्रायः लघु गीतों की ही रचना की है। छोटे गीतों में भावों की एकतानता विद्यमान रहती है। एक ही भाव प्रारंभ से लेकर अंत तक व्याप्त रहता है। उसमें एक ही लय इस भाव को स्पष्ट करती है। यही गीत की अन्विति है। इसी अन्विति के कारण पूर्वापर संबंध बना रहता है। एक पंक्ति दूसरी को आबद्ध नहीं करती वरन् एक ही भाव को विस्तार देती हुई आद्यंत उसी भाव का नियोजन करती चलती है। संक्षिप्तता से उसे एक निश्चित सीमा मिलती है और गीत में कसाव आता है अन्यथा बड़े गीतों में भाव बिखरने की आशंका बराबर बनी रहती है। महादेवी के कुछ गीत ऐसे हैं जिनमें एक ही भाव नहीं रहता, भाव परिवर्तित हो जाता है। इस तरह के गीतों में भाव–शृंखला टूटती दिखायी पड़ती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महादेवी के अधिकांश गीत कसे हुए हैं तथा उनमें आद्यंत एक ही भावधारा विद्यमान रहती है। संक्षिप्तता और अन्विति उनका बड़ा गुण है। अगर कवयित्री के समस्त काव्य को ध्यान में रखकर विचार करें तो यह स्पष्ट होता है कि ज्यों–ज्यों उनकी काव्य कला का विकास होता गया त्यों–त्यों उनके गीत संक्षिप्त होते गये हैं।

12.6.6 भाषा–शैली

महादेवी की भाषा अत्यंत समृद्ध है। उन्होंने कल्पना का प्रयोग करते हुए अनेक नए शब्दों को गढ़ा तथा कुछ पुराने शब्दों को नए संदर्भों में ढालकर, तराशकर उन्हें नवीनता प्रदान की है। यद्यपि उनके शब्दों का कोष अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा सीमित है परन्तु उन्होंने भाषा के प्रयोग में जो कुशलता दिखाई है वह अनुपम है। डॉ॰ प्रकाशचंद्र गुप्त महादेवी की भाषा के बड़े प्रशंसक है। वे कहते हैं– ''उनके गीतों का एक बड़ा आकर्षण उनकी अनमोल साँचे में ढली

भाषा है। भाषा की दृष्टि से वे किसी कवि से पीछे नहीं। अन्य कवियों में इस प्रकार चुन चुनकर–मोतियों की जड़ाई नहीं मिलती। यह शब्दों की शिल्पकला आपकी अपनी विशेषता है।

उनमें कल्पना की विशिष्टता तथा भाव और शिल्प की अनुकूलता दिखाई देती है। भाषा परिष्कृत, प्रौढ़, श्रुति–मधुर, ललित, संस्कृत पदावली से युक्त एवं सरस है। एक–एक शब्द के संगीत पर ध्यान रखने के साथ ही साथ सम्पूर्ण शब्द–संगति के संगीत पर भी ध्यान रखा है। शब्द–संगति बैठाने में स्वर और व्यंजन संबंधी अनुप्रास का सहारा लिया है। उन्होंने अपने आस पास की बोली को अपनाकर लिखा है। इस गीत में लोकगीत की मिठास दिखाई पड़ती है–

मधुर पिक हौले–हौले बोल।

हठीले हौले–हौले बोल।

जाग लुटा देंगी मधु कलियाँ मधुप कहेंगे और,

चौंक गिरेंगे पीले पल्लव अम्ब चलेंगे मौर,

समीरण मत्त उठेगा डोल।

हठीले हौले–हौले बोल।।

'हौले–हौले' शब्द के प्रयोग से गीत में माधुर्य और लयात्मकता का संचार हो गया है। महादेवी की काव्य–भाषा में रागात्मकता, प्रगाढ़ अनुभूति लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता और चित्रात्मकता का अपूर्व समन्वय दिखायी पड़ता है।

12.7 सारांश

हिन्दी गीतिकारों में महादेवी का उच्च स्थान है। छायावाद के कवियों में अभिव्यक्ति की जो गहनता, गूढ़ता एवं रहस्यमयता मिलती है वही महादेवी में भी पाई जाती है पर विचार के औदात्य, भावना के संयम, कल्पना के सौन्दर्य एवं शैली के लालित्य के पारस्परिक सामंजस्य एवं सन्तुलन की दृष्टि से महादेवी इन सबसे आगे दिखाई पड़ती हैं। हिन्दी गीतिकाव्य में महादेवी का योगदान चिरस्थायी रहेगा। उनके गीत 'साहित्य' की अमर निधि बन कर रहेंगे।

12.8 कठिन शब्द

आत्मनिवेदन

आत्मनिष्ठा

संवेग

अपार्थिव

आर्त्तक्रन्दन

प्रणयन

अन्विति

आबद्ध

आघंत

प्रगाढ़

12.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. गीति काव्य के प्रमख तत्वों को स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

प्र०2. महादेवी के गीतिकाव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

प्र०3. मुक्तक, गीत तथा प्रगीत पर एक संक्षिप्त लेख लिखें।

_____

_____

_____

12.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. महादेवी : नया मूल्यांकन – डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त
2. महादेवी साहित्य : एक नया दृष्टिकोण – पद्यम सिंह चौधरी

.....

महादेवी वर्मा की विरहानुभूति

13.0 रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 महादेवी वर्मा की विरहानुभूति

13.3.1 प्रियतम के प्रति आकुलतापूर्ण विरह निवेदन

13.3.2 संसार तथा जीवन की नश्वरता

13.3.3 करुणा भाव

13.3.4 दुखवाद

13.4 सारांश

13.5 कठिन शब्द

13.6 अभ्यासार्थ शब्द

13.7 संदर्भ ग्रन्थ

13.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप

(1) महादेवी वर्मा की विरह वेदना के कारक तत्वों से परिचित होंगे।

(2) महादेवी की विरहानुभूति के स्वरूप से अवगत होंगे।

(3) महादेवी के विरहानुभूति की आधार भूमि से परिचित होंगे।

13.2 प्रस्तावना

वेदना जीवन का अनिवार्य भाव है, इसीलिए आदिकाल से ही वेदना और काव्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है। वेदना काव्य को स्पन्दन देती आई है। महादेवी वर्मा की वेदना हिन्दी–साहित्य की सर्वोत्कृष्ट निधि है, इनकी विरह वेदना के कारक तत्वों के विषय में हिन्दी आलोचक एक मत नहीं हैं। शचीरानी गुटूँ ने इनके असफल वैवाहिक जीवन को इनकी वेदना का मूल कारण स्वीकारते हुए लिखा है– ''यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन–गगन के पट पर स्नेह–ज्योत्स्ना छिटकी पड रही थी, तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखाएँ–सी अंकित कर गई। आत्म संयम का व्रत लिये हुए उन्होंने जिस लौकिक प्रेम को ठुकराकर पीड़ा को गले लगाया, वह कालान्तर में आंतरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत–कुछ निखर तो गई, किन्तु उनके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा और वे उसे निरन्तर कलेजे से चिपटाये रखने की मानो हठ पकड़ बैठी।''

डॉ॰ नगेन्द्र इस संदर्भ में लिखते हैं –''सामयिक परिस्थितियों के अनुरोध से जीवन से रस और माँस न ग्रहण कर सकने के कारण वह एक तो वांछित शक्ति का संचय न कर पाई, दूसरे एकान्त अन्तर्मुखी हो गई।'' इन उदाहरणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि महादेवी की विरह वेदना का मूल कारण तो भौतिक ही है जो उदात्त बन कर रहस्यवादी या आलौकिक बन गया है। महादेवी वर्मा का विषय में कहना है – 'सुख–दुख की धूपछाँही डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख गिनते रहना क्यों प्रिय है, यह बहुत लोगों के लिए आश्चर्य का कारण है। ....जीवन में मुझे बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुख की छाया न पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।'

13.3 महादेवी वर्मा की विरहानुभूति

महादेवी वर्मा की कविता का संसार विस्तृत नहीं है। न ही उसमें विविधता है परन्तु एक निश्चित उद्देश्य, एक निश्चित स्वप्न लेकर ये कविताएँ लिखी गई हैं। जीवन को अधिक समृद्ध, अधिक सार्थक तथा उपयोगी बनाने की कामना ये वह बार–बार जीवन के लक्ष्य की ओर संकेत करती हैं। इस प्रकार उनकी कविता जीवन के निकट है अतः उन्हें दुख के दोनों रूप प्रिय हैं–

'एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बंधन में पड़े हुए असीम चेतन के क्रन्दन को स्वीकारता है।' डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान ने इसको भारतीय समाज में परतन्त्र नारी के क्रन्दन का भी प्रतीक माना है। महादेवी वर्मा की विरहानुभूति को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचित किया जा सकता है–

13.3.1 प्रियतम के प्रति आकुलतापूर्ण विरह–निवेदन

हिन्दी आलोचकों का महादेवी पर यह आक्षेप है कि इनका प्रियतम काल्पनिक है, अतः इनकी विरह–वेदना भी अवास्तविक और काल्पनिक है। स्वयं कवयित्री इस आक्षेप का खण्डन करते हुए कहती हैं–

जो न प्रिय पहचान पाती?

दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत से तरल बन?

क्यों अचेतन रोम पाते चिर–व्ययामय सजग जीवन?

किसलिए हर साँस तम में सजल दीपक राग गाती?

जो न प्रिय पहचान पाती?

इससे स्पष्ट है कि कवयित्री का प्रियतम उसके लिए जाना–पहचाना है, जिसके विरह में वह रात–दिन दीपक की भाँति जलती रहती है। उसने प्रकृति के कण–कण से अपने प्रियतम का आभास पाया है, संसार के प्रत्यके प्रकाश में उसकी ज्योति देखी है। पर फिर भी वह प्रियतम उसकी विरह–वेदना को मिटा नहीं सकता है, बल्कि उसने तो निरन्तर उसकी वेदना को बढ़ाया ही है–

जीवन है उन्माद तभी से निधियाँ प्राणों के छाले,

माँग रहा है विपुल वेदना के मन प्याले पर प्याले।

अत्यधिक विरह ने कवयित्री के मन में दृढ़ता का अभाव में वह चुनौती सी देती हुई कह उठती है–

चिता क्या है हे निर्मम! बुझ जाये दीपक मेरा,

हो जाएगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अंधेरा।''

विरह को सहते–सहते कवयित्री का पीड़ा से इतना लगाव हो जाता है कि वह पीड़ा को ही प्रियतम मिलन का साधन मान बैठी है–

'पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा,

तुमको पीड़ा में ढूँढा तुममें ढूँढूंगी पीड़ा।

यही पीड़ा अन्त में कवयित्री को वह शक्ति प्रदान करती है कि वह अपने प्रियतम से तदाकार हो जाती है, ठीक उसी तरह जिस तरह चित्र और रेखा का, मधुर राग और स्वरों का अविच्छिन्न सम्बन्ध होता है और प्रेयसी तथा प्रियतम की द्वैतता केवल भ्रमात्मक रह जाती है–

''चित्रित तू मैं हूँ रेखा–क्रम,

मधुर राग तू में स्वर–संगम

तू असीम मैं सीमा का भ्रम,

काया छाया में रहस्यमय?'

इस प्रकार महादेवी वर्मा का विरह केवल दुख का भाव नहीं है, वरन् यह एक प्रकार की साधना है जो परम प्रियतम से मिलन में सहायक सिद्ध होती है।

13.3.2 संसार तथा जीवन की नश्वरता

संसार तथाा जीवन नश्वरता भी महादेवी वर्मा की विरह–वेदना को बढावा देती है। वह संसार की क्षण भंगुरता को देखकर अत्यन्त दुखी हो उठती हैं–

''देकर सौरभ–दान पवन से कहते जब मुरझाये फूल,

जिसके पथ में बिछे वही क्यों भरता इन आँखों में धूल?

अब इसमें क्या सार मधुर जब गाती भौरों की गुंजार,

मर्मर का रोदन कहता है कितना निष्ठुर है संसार।

इस निष्ठुर संसार में रहने वाला व्यक्ति केवल अपने ही सुख–दुख में लीन रहता है। किसी दूसरे के दुख में करूणा से विगलित होने का उसके पास समय ही नहीं है। तभी तो महादेवी वर्मा कहती हैं–

''जब न तेरी ही दशा पर दुख हुआ संसार को,

कौन रोयेगा सुमन हमसे मनुज निःसार को।

जीवन–जगत की क्षण भंगुरता को उन्होंने एक शाश्वत सत्य के रूप में व्यक्त किया है–

सखे यह माया का संसार, क्षणिक है तेरा मेरा संग,

यहाँ रहता काँटो में बन्धु, सुमन का यह चटकीला रंग।

इसी संदर्भ में उन्होंने 'उत्सर्ग' अथवा 'बलिदान' की भावना व्यक्त की है–

स्निग्ध अपना जीवन कर झार

दीप करता आलोक प्रसार,

गला कर मृत पिंडों में प्राण,

बीज करता असंख्य निर्माण,

सृष्टि का है यह अमिट विधान,

एक मिटने में सौ वरदान।''

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन पर जीवन–जगत की क्षणिकता और 'उत्सर्ग' से 'निर्माण' की दिशा में उन पर आस्तिक–दर्शनों के शाश्वत सत्य का प्रभाव अधिक है।

13.3.3 करुणा भाव

करुणा महादेवी वर्मा की विरहानुभूति का आधार है। यह करूणा बौद्धों की महाकरूणा है जिसमें दूसरों के दुखों से द्रवीभूत होने की क्षमता है। इसी करूणा के चलते कवयित्री अपने सम्पूर्ण जीवन को दूसरों के दुख दूर करने के लिए बलिदान करने के लिए कटिबद्ध है। उसकी साध यही है कि या तो 'मैं नीर भरी दुख की बदली' बनकर संतप्त जगत् पर बरसकर उसे शान्ति प्रदान करूँ या 'अचंचल दीप की भाँति निरन्तर जलकर' पथ–भ्रष्ट पथिकों का पथ–प्रदर्शन करूँ। वह एक मात्र वरदान चाहती हैं कि दूसरों के सुख के लिए स्वयं को निरन्तर मिटाती रहूँ–

नित घिरूँ झर–झर मिटूँ प्रिय।

घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय।

बादल एवं दीपक के प्रतीक इनकी अजस्र करूणा के परिचायक हैं। करूणा में आकंठ निमग्न होने के कारण दुख और पीड़ा से इनका सहज लगाव हो गया है। दुःख इनका प्रिय सहचर बन गया है जिससे पृथक होना उन्हें अभीष्ट नहीं। वह तो अपना समर्पण भी उसी व्यक्ति को करना चाहती है जिसने इनकी भाँति दुख से मित्रता कर ली हो–

'प्रिय जिसने दुख पाला हो।

वर दो यह मेरा आँसू उसके उर की माला हो।

इस प्रकार कवयित्री अपनी संकीर्ण परिधि से निकल कर जीवन और जगत् की उस व्यापक सीमा पर आ गई है जहाँ वह सभी के दुख को पहचान सकती हैं। उन्हीं के शब्दों में –

अलि मैं कण–कण को जान चली,

सबका क्रंदन पहचान चली।

कवयित्री के मन में दूसरों के दुख दूर करने की प्रबल आकांक्षा है। वह धूप बनकर दूसरों का जीवन एवं दीप बनकर सबको प्रकाश देने की कामना करती हुई कहती हैं–

'पथ में मृदु स्वेद कण चुन, छाँह से भर प्राण उन्मन,

तम–जलधि में नेह का मोती रचूँगी सीप–सी मैं।

धून–सा तन दीप–सी मैं।''

महादेवी की विरहानुभूति ने इन्हें दृढ़ आत्म–विश्वास भी प्रदान किया है जिसके बल पर वह संसार की सभी बाधाओं से जूझ जाने की क्षमता रखती हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में इनका यही दृढ़ आत्म–विश्वास मुखरित होता है–

और होंगे नयन सूखे तिल बुझे औं पलक रूखें;

आर्द्र चितवन में यहाँ रात विद्युतों में दीप खेला।

अतः महादेवी की विरहानुभूति निराशाजन्य नहीं वरन् आशा से पूर्ण है। उनका विचार है – 'आग हो डर में तभी दृग में सजेगा आज पानी' मात्र करूणा सार्थकता तभी है जब हम इस स्थिति को दूर करने के लिए कटिबद्ध हो जाये। यह शक्ति, यह संघर्ष उनके विरह की विशेषता है। ये आँसू प्रभात की चाह लेकर आँखों में आए हैं। उनकी पलकों में जो स्वप्न हैं वे उसे प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाना चाहती हैं–

यह चंचल सपने भोले मैंने मृदु

पलकों पर तोते हैं

वे सौरभ से पंख इन्हें सब नयनों में पहुँचाना है।

हिन्दी आलोचकों ने महादेवी को विरहानुभूति की कवयित्री तो माना परन्तु उन्हें अन्तर्मुखी वैयक्तिक अनुभूतियों तक ही सीमित रखा और उन्हें पलायनवादी भी कहा गया। उनकी इस प्रवृत्ति को डॉ॰ नगेन्द्र आध्यात्मिक से न जोड़कर मानसिक शारीरिक अतृप्तियों और कुण्ठा से जोड़ते हैं। डॉ॰ विनय मोहन वर्मा के अनुसार महादेवी के काव्य में पीड़ा और पलायन के सिवा कुछ नहीं। डॉ॰ लक्ष्मी नारायण सुधांशु कहते हैं कि उनका काव्य उनके एकाकी जीवन का प्रतिबिम्ब है। किसी अभाव ने ही उनके जीवन को विरहानुभूति से भर दिया है। परन्तु यदि महादेवी का सही मूल्यांकन किया जाये तो हम पाते हैं कि यदि उनमें निराशा और दुख है तो दूसरी ओर आशा और जीवन की आकांक्षा भी हैं। उनमें पीड़ा और पलायन है तो विद्रोह और संघर्ष भी है। इस संदर्भ में डॉ॰ मैनेजर पाण्डेय का कथन अक्षरशः सही है– महादेवी वर्मा की कविता के साथ आलोचनात्मक पूर्वाग्रह की स्थिति दिखाई देती है। यह ठीक है कि उनकी कविता में दुख है, वेदना है, निराशा है, आँसू हैं, अन्तर्मुखता है और अभिव्यक्ति शैली में परोक्ष की प्रधानता है। पर साथ

ही वहाँ असन्तोष है, आक्रोश है और संघर्ष की चेतना भी। आलोचकों ने उनके आँसुओं पर ध्यान दिया है लेकिन उनके आक्रोश पर नहीं। प्रायः आलोचकों ने यह थी देखने समझने की कोशिश नहीं की है कि महादेवी वर्मा की कविता में जो दुख, वेदना, निराशा और अन्तर्मुखता है वह सब उनके समय की और आज की थी भारतीय स्त्री के जीवन की वास्तविकताएं हैं और संभावनाएं थी।

13.3.4 दुखवाद

महादेवी की कविताओं का केन्द्र बिन्दु दुख है। यह दुखवाद दो आधार भूमियों पर टिका है – आध्यात्मिक और मानवतावादी भाक्भूमि। मनुष्य ही नहीं उनकी चिंता तो पक्षियों के प्रति भी दिखाई देती है–

पथ न भूले एक पग भी

घर न खाए लघु विहग भी

स्निग्ध लौ की तूलिका से

आँक सबकी छाँह उज्जवल।

उनकी कविताओं में दिन के उजाले की अपेक्षा रात का अंधेरा अधिक है। रात के अपार अन्धकार और निस्तब्धता में एक जलते हुए दीपक का चित्र बार–बार उभरता है। जलना मानो उनके जीवन का पर्याय बन गया। 'दीपशिखा' के 'दो शब्द' में वे लिखती हैं– ''आलोक मुझे प्रिय है पर दिन से अधिक रात का, दिन में तो अंधकार से उसके संघर्ष का पता ही नहीं चलता, परन्तु रात में हर झिलमिलाती लौ योद्धा की भूमिका में अवतरित होती है।''

डॉ॰ रामविलास वर्मा कहते हैं कि महादेवी की कविता का परिचय 'नीर भरी दुःख की बदली' कहकर नहीं दिया जा सकता वरन् उसके लिए उपयुक्त पंक्ति है– 'रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ।'

यह दुःख, यह अकेलापन, यह अंधकार तथा निराशा का भाव इसलिए चित्रित है क्योंकि जीवन की चाह है, सुख की कामना है तथा प्रकाश की प्रतीक्षा है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इस दुःख तथा संघर्ष से वे हार मानने वाली नहीं हैं। वे कहती हैं – मनुष्य मेरे लिए मेरे निकट निरंतर बड़ा है। जीवन से उन्हें अथाह प्रेम है तभी वे ऐसी बातें कह सकी हैं।

1. पंथ होने दो अपरिचित

प्राण रहने दो अकेला

अन्य होंगे चरण हारे

और हैं जो लोटते दे शूल को संकल्प सारे

दुःख उनके जीवन पथ की क्षणिक अनुभूति नहीं, उनकी सम्पूर्ण साहित्य साधना का मूलाधार है। और सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि उनमें लोक में व्याप्त दुख और निजी दुख को दूर करने की प्रबल आकांक्षा है।

डॉ॰ राम विलास शर्मा ने उचित ही लिखा है – ''पीड़ा के चित्रण मात्र से कोई जीवन को अस्वीकार नहीं करने लग जाता। जीवन में वांछित सौंदर्य और आनन्द के मिलने से भी मनुष्य को पीड़ा होती है। संसार में अगणित मनुष्यों को शोषित और त्रस्त देखकर किसी भी सदस्य को पीड़ा होगी। इस तरह की पीड़ा की अभिव्यक्ति जीवन की स्वीकृत ही मानी जायेगी।

वस्तुतः उनमें वस्तुजगत के साथ संबंध कहीं भी शिथिल नहीं हुआ है। यह विश्व और उसकी विरह वेदना उनके चिन्तन के दायरे में बनी रहती है।

डॉ॰ शिव कुमार मिश्र मानते हैं कि महादेवी जीवन और जगत को अपनी कविताओं में नहीं भूली हैं। जीवन के प्रति उनका आत्मीय लगाव है और धरती के सौन्दर्य की वे अदभुत चितेरी हैं। डॉ॰ मिश्र लिखते हैं–

''जहाँ तक महादेवी के काव्य में पीड़ा और वेदना की विवशता का, आँसुओं के साम्राज्य का अथवा चिर विरह की अनुभूति का प्रश्न है, अपने रहस्यवादी 'ओवरटोन्स' में भी ये सब मानवीय और लौकिक संदर्भों से विरहित नहीं है। जगह–जगह उन्होंने अपनी इस वैयक्तिक पीड़ा तथा वेदना को अथवा आँसुओं की अथाह राशि को विश्व में व्याप्त पीड़ा तथा वेदना से एकीकृत किया है? अपनी करुणा की अक्षय पूँजी को संसार की निर्धनता एवं अभावों पर लुटाया है। रहस्यवाद के छद्म को हटाकर देखें, महादेवी की कविता की आधारभूमि नितांत मानवीय हैं।

13.4 सारांश

महादेवी वर्मा की कविताओं का केन्द्र बिन्दु दुःख है। उनमें जीवन, प्रेम और सौन्दर्य के लिए विह्वल आकांक्षा है। वह मार्ग की कठिनाइयों से विचलित नहीं होती बल्कि उनसे टकराने की प्रवृति उनमें दिखाई देती है। यह विरहानुभूति निराशाजन्य नहीं वरन् आशा से पूर्ण है। उनके अनुसार मात्र आँसू कुछ नहीं कर सकते। आँसू तभी सार्थक हैं जब कुछ करने की प्रेरणा मन में हो आग हो उर में तभी आँख में सजेगा आज पानी।

निराशावाद की अंधेरी रात में जीवन प्रभात की चाह महादेवी की रचनाओं में बार–बार दीप्त हो उठती है और जितना ही यह अंधेरा घना होता है, उतनी ही यह चाह और भी तीव्र हो जाती है।

1.5 कठिन शब्द

परिष्कार

संकीर्णता

परिलक्षित

विलक्षण

विवृति

अथाह

शिथिल

दीप्त

13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. महादेवी की विरहानुभूति पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

प्र०2. महादेवी के काव्य में व्यक्त रहस्यवाद के स्वरूप को स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

प्र०3. महादेवी की विरहानुभूति निराशाजन्य नहीं वरन् आशा से पूर्ण है। स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

13.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. महादेवी : नया मूल्यांकन – डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त
2. महादेवी साहित्य : एक नया दृष्टिकोण – पद्यम सिंह चौधरी

.....

महादेवी वर्मा की काव्य कला

14.0 रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 महादेवी की काव्य कला

14.3.1 कोमलकान्त पदावली

14.3.2 लाक्षणिकता

14.3.3 संगीतात्मकता

14.3.4 प्रकृति का मानवीकरण

14.3.5 अप्रस्तुत विधान

14.3.6 छन्द विधान

14.3.7 चित्रात्मकता

14.3.8 प्रतीकात्मकता

14.4 सारांश

14.5 कठिन शब्द

14.6 अभ्यासार्थ शब्द

14.7 संदर्भ ग्रन्थ

14.1 उद्देश्य

यह इकाई महादेवी वर्मा की काव्य कला पर आधारित है। इसके अध्ययन उपरान्त आप–

- छायावादी काव्य भाषा का स्वरूप जान पाएंगे।
- महादेवी वर्मा की काव्य भाषा एवं शब्द योजना की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
- महादेवी के काव्य में प्रयुक्त छन्द विधान से परिचित होंगे
- महादेवी के अप्रस्तुत–विधान की विशिष्टताओं को समझ सकेंगे।
- महादेवी के काव्य में बिम्ब विधान द्वारा आए काव्य सौष्ठव को जान पाएंगे।
- महादेवी के प्रतीक–विधान की कलात्मकता से परिचित होंगे।

14.2 प्रस्तावना

काव्य के दो पक्ष होते हैं– अनुभूति पक्ष एवं अभिव्यक्ति पक्ष। इन्हें ही क्रमशः भावपक्ष एवं कलापक्ष कहा जाता है। अनुभूति पक्ष काव्य का साध्य है तो अभिव्यक्ति पक्ष साधन। भावपक्ष की प्रबलता कवि के आत्मबल और रागात्मक शक्ति का परिचय देती है तो कलापक्ष की सबलता उसके व्यक्तित्व की अलौकिकता का। शरीर और आत्म–सौन्दर्य के सामंजस्य में जैसे जीवन आकर्षक बन जाता है' उसी प्रकार काव्य के सौन्दर्य अथवा प्रभाव का निखार निहित है। जिस कवि में यह क्षमता जितनी अधिक होगी, उतना ही उसका काव्य 'जीवित' तथा प्रभावशाली होगा।

14.3 महादेवी की काव्य कला

महादेवी वर्मा ने अपने भाव बोध के आधार पर भाषा की संरचना की। नए–नए शब्द गढे और भावाभिव्यंजना की नूतन शैली तलाश की। उन्होंने छायावादी काव्य धारा को नई भंगिमा ही नहीं दी वरन नए भाव तथा विचार भी दिए। उनकी भाषा की समृद्धता इसका प्रमाण है। उनके काव्य में कल्पना की ऊँची उड़ान, अनुभूति की गहनता, संवेदना की व्यापकता, अनूठे अप्रस्तुत विधान, कलात्मक बिम्बात्मकता और महत्त्वपूर्ण प्रतीक विधान का अपूर्व संयोजन मिलता है। महादेवी वर्मा की काव्य कला की प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित हैं–

14.3.1 कोमलकान्त पदावली

महादेवी वर्मा अपने शब्द चयन के प्रति अत्यन्त जागरूक रही हैं, इसीलिए उन्होंने सभी प्रकार के शब्दों को भावाभिव्यंजना के लिए उपयुक्त मान कर निसंकोच ग्रहण किया है। तत्सम शब्दों का बहुलता से प्रयोग किया गया है

जिससे इनका काव्य कहीं–कहीं दुर्बोधता की सीमा तक पहुँच गया है। उदाहरण –

'डर का दीपक चिर स्नेह अतल

सुधि लौ शत झंझा से निश्चल;

सुख से भीनी दुख से गीली

वर्ती–सी साँस अशेष रही।

मैं क्यों पूछूँ यह विरह–निशा

कितनी बीती क्या शेष रही।

तत्सम शब्दों के अतिरिक्त इन्होंने तद्भव, देशज, ध्वन्यात्मक तथा विदेशी सभी तरह के शब्दों का प्रयोग किया है। बिछौना, साँस, सुहाग, छाँह, पीर, रीता, सपना, आलस, अमोल, गगरी, नींद, चितेरा आदि अनेक तद्भव शब्दों का प्रयोग मिलता है। उदाहरण–

उस सोने से सपने को,

देखे कितने दिन बीते,

आखों के कोश हुए हैं,

मोती बरसा कर रोते।

देशज शब्दों में हौले–हौले, धीरे–धीरे, कजरारे, अलबेला, मतवारे, पाहुन आदि शब्दों का कुशल प्रयोग मिलता है। उदाहरण–

मुख पिक हौले–हौले बोल।

हठीले हौले–हौले बोल।

वर्ण–मैत्री इनकी शब्द –योजना की एक प्रमुख विशेषता रही है। इनके काव्य में वर्णों की मात्राएँ, उनका गठन और उनकी रूप–रचना प्रायः समान होती है। एक ही वर्ण की आवृत्ति सतत् नहीं होती। अतः उनकी कविताओं की पंक्तियों में अनुप्रास का प्रयोग न होते हुए भी वे अनुप्रास का आभास देती है। उदाहरण –

कर व्याथाएँ

सुन कथाएँ

तोड़ सीमा की प्रथाएँ

प्रातः के अभिषेक को हर दृग सजाती आ।

डर–डर बसाती आ।

सपने सजाती आ।

14.3.2 लाक्षणिकता

लाक्षाणिकता की दृष्टि से महादेवी की कला भव्य एवं सफल सिद्ध होती है। इन्होंने अपने गीतों में अनेक भावों के सुन्दर चित्र अंकित किए हैं। थोड़ी–सी रेखाएँ तथा थोड़े से रंगों से उभरते हुए चित्रों के समान इनकी कविता में अल्प शब्दों के सहारे अनेक सुन्दर चित्र चित्रित हुए हैं। उदाहरण –

'देखकर कोमल व्यथा को

आँसुओं के सजल रथ में,

मोम–सी साधें बिछा दीं

थीं इसी अंगार–पथ में,

स्वर्ण हैं वे मत कहो अब क्षार में उनको सुला लूँ। निम्न पंक्तियों में लाक्षणिक मूर्त्तिमता का चित्र अत्यन्त मादक तथा प्रभावोत्पादक है–

सकुच सजल खिलती शेफाली,

असल मौल श्री डाली–डाली;

बुनते नव प्रवाल कुंजों में,

रजत श्याम तारों से जाली;

शिथिल मधु–पवन गिन गिन मधु कण

हरसिंगार झरते हैं झर–झर।

14.3.3 संगीतात्मकता

महादेवी वर्मा के गीतों में भावों के उन्मेष के चित्रण में संगीतात्मक तथा लयात्मक शब्दों का सहारा लिया गया है। शब्दों के माध्यम से संगीत की सृष्टि करने में कवयित्री माहिर हैं –

सिहर–सिहर उठता सरिता डर

खुल–खुल पड़ते सुमन सुधा भर

मचल मचल आते पल फिर–फिर

सुन प्रिय की पदचाप हो गयी

पुलकित यह अवनी।

यहाँ सिहर–सिहर, खुल–खुल, मचल, मचल शब्दों द्वारा संगीत का सुन्दर विधान हुआ है।

महादेवी वर्मा का काव्य गीतिकाव्य है जिसमें साहित्यिक गीतों की विशेषताएं हैं और लोक गीतों की भी। लोक गीतों का लयात्मक संगीत इनके अनेक गीतों में मिलता है। यथा–

'जो तुम आ जाते एक बार।

हँस उठते पल में आर्द्र नयन धुल जाता ओठों का विषाद,

छा जाता जीवन में वसंत लुट जाता। चिर–संचित विराग,

आखें देतीं सर्वस्व वार।'

कौन तुम मेरे हृदय में?

अनुसरण निश्वास मेरे कर रहे किसका निरन्तर?

चूमदे पद–चिन्ह किसके लौटते यह श्वास फिर फिर?

कौन बंदी कर मुझे अब बँध गया अपनी विजय में?

कौन तुम मेरे हृदय में?'

जो न प्रिय पहचान पाती!

दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत–सी तरल बन? क्यों अचेतन रोम पाते चिर व्यथामय सजग जीवन? किसलिए हर साँस तम में सजल दीपक राग गाती?'

छायावाद की एक खास विशेषता है ऐसे शब्दों का प्रयोग जिनके नाद से अर्थ की व्यंजना होती हो। इन शब्दों की लय और ध्वनि काव्य में संगीत की सृष्टि करने में सहायक होती हैं।

रजत शंख–घड़ियाल स्वर्ण वंशी–वीणा–स्वर,

गये आरती बेला को शत–शत लय से भर।

आरती की बेला में मंदिर में अनेक वाद्य यंत्रों से व्याप्त ध्वनियों का नादमय सजीव वातावरण चित्रित है। शंख, घंटे, वंशी तथा वीणा के समवेत स्वर की अनुगूँज नाद सौंदर्य की सृष्टि करती है। महादेवी के गीतों में भावों के उन्मेष के चित्रण में संगीतात्मक तथा लयात्मक शब्दों का सहारा लिया गया है। शब्दों के प्रयोग द्वारा सगं सृष्टि करने में कवयित्री माहिर हैं –

सिहर–सिहर उठता सरिता उर

खुल–खुल पदते सुमन सुधा भर

मचल–मचल आते पल फिर–फिर

सुन प्रिय की पदचाप हो गयी

पुलकित यह अवनी।

14.3.4 प्रकृति का मानवीकरण

छायावादी काव्य में प्रकृति का इतने विस्तार और इतने रूपों में चित्रण हुआ है कि कुछ आलोचकों ने इस काव्य को प्रकृति–काव्य ही कह डाला। महादेवी वर्मा ने भी प्रकृति का अनेक रूपों में चित्रण किया है–

पिक की मधुमय वंशी बोली,

नाच उठी सुन अलिनी, भोली;

अरूण सजल पाटल बरसाता,

तम पर मृदु पराग की रोली;

मृदुल अंक धर दर्पण–सा सर,

आँक रही निशि–दृग–इन्दीवर।

आज नयन अति क्यों भर–भर?

यह प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण है। इसके अतिरिक्त आलम्बन, पूर्वपीठिका, उपदेशक आदि सभी रूपों में कवयित्री ने प्रकृति का चित्रण किया है। उनका प्रकृति के प्रति आत्मीयता का दृष्टिकोण रहा है। अतः उन्होंने प्रकृति पर मानवीय भावनाओं का आरोपण करके इस आत्मीयता की अभिव्यक्ति की है। वर्षा ऋतु में बादलों को छाये देख कर महादेवी की प्रतिमा एक ममतामयी माँ की कल्पना करती हुई उससे दुखी जगत रूपी शिशु को गोद में ले लेने की मनुहार करती हुई कहती हैं–

रूपसि तेरा धन–केश–पाश!

श्यामल–श्यामल कोमल कोमल!

लहराता सुरभित केश–पाश।

– – – – –

दुलरा दे ना, बहला दे ना,

यह तेरा शिशु जग है उदास।

रूपसि तेरा धन–केश–पाश।

प्रकृति का नायिका के रूप में चित्रण देखिए–

पुलकती आ बसंत रजनी।

तारकमय नव वेणी बंधन,

शीशफूल कर शशि का नूतन,

रश्मि–वलय सित–धन अवगुंठन,

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी।

14.3.5 अप्रस्तुत विधान

अप्रस्तुत का अर्थ है प्रस्तुत को अधिक भावपूर्ण बनाने के लिए किसी अन्य वस्तु की कल्पना या सम्भावना करना। दूसरे शब्दों में इसे अलंकार–विधान भी कहते हैं। अलंकारों का प्रयोग करते समय कवि को अपने वर्ण्य–विषय को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उपमानों का सहारा लेता है। ये उपमान दो तरह के हैं– स्थूल और सूक्ष्म। छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है, अतः इसमें सूक्ष्म उपमानों का बाहुल्य होना स्वाभाविक ही है।

करते करुणा–धन छाँह वहाँ, झुलसाता निदाध सा दाह नहीं;

मिलती शुचि आँसुओं की सरिता, मृगवारि का सिंधु अथाह नहीं;

हँसता अनुराग का इन्दु सदा, छलना की कुहु का निबाह नहीं;

फिरता अलि भूल कहाँ भटका, यह प्रेम के देश की राह नहीं।

इन पंक्तियों में प्रयुक्त सभी उपमान सूक्ष्म हैं।

महादेवी के काव्य में अलंकारों का प्रयोग प्रायः रूप साम्य की दृष्टि से न होकर प्रभाव साम्य की दृष्टि से हुआ है। अलंकारों द्वारा भावाभिव्यंजना तथा सौंदर्यानुभूति अत्यन्त कलात्मकता के साथ व्यक्त हुई है। कतिपय अलंकारों के प्रयोग दृष्टव्य हैं–

उपमा –

विधु की चाँदी की थाली

मादक मकरंद भरी–सी।

विरोधमूलक

'नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी।

त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,

कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ।'

रूपक –

प्रकृति के अनेक रूपक उनके जीवन के साथ एकाकार होकर आए हैं

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।

वेदना में जन्म, करूणा में मिला आवास,

अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात!

जीवन विरह का जलजात!

रूपक अलंकार के लिए उनकी 'मैं नीर भरी दुख की बदली' कविता भी उल्लेखनीय है।

उल्लेख –

उल्लेख अलंकार के लिए यह रचना देखने योग्य है–

तुम हो विधु के बिम्ब और मैं, मुग्धा रश्मि अजान,

जिसे खींच लाते अस्थिर कर, कौतूहल के बाण!

अन्योक्ति

कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो

अब असल बंदी युगों का

ले उड़ेगा शिथिल कारा

पंख पर वे सजल सपने तोल दो।

समासोक्ति–

चुभते ही तेरा अरून बान–

इन कनक रश्मियों में अथाह

लेता हिलोर तम सिंधु जाग,

बनती प्रवाल का मृदुल कूल

जो क्षितिज रेख थी कुहर – म्लान।

इस प्रकार अनेक प्रतीकों से महादेवी वर्मा ने अपने काव्य को सजाया है। अर्थालंकारों की ओर उनकी विशेष रूचि नहीं दिखाई देती है। अनुप्रास, यमक आदि अलंकार यहाँ अपने आप आ गए हैं।

मात्र उपमान –

अपने कथन की स्थापना हेतु विविध उपमानों की योजना मात्र उपमान का अच्छा उदाहरण है –

14.3.6 छन्द विधान

भाषा की लय को एक निश्चित आकार देने के लिए लिये छंद का विधान होता है। महादेवी ने गीतों की रचना की है जो छंदोबद्ध हैं। उन्होंने परम्परागत छंदों से अलग हटकर नये प्रयोगों द्वारा गीतों को नए स्तर पर विकसित किया। भाषा तथा अलंकार–विधान की भाँति छंद भी काव्य का अनिवार्य उपकरण हैं। नयी संवेदना, नये कथन की भंगिमा के कारण छंद में भी परिवर्तन की आवश्यकता पहचानी गयी। महादेवी ने परम्परागत छंदों में तो परिवर्तन किया ही साथ ही नए छंदों का निर्माण भी हमें उनमें मिलता है। निराला ने मुक्त छंद की बात की है न कि छंद मुक्ति की। वे छंदों को परंपरागत नियमों से मुक्त करना चाहते थे, कविता को छंद विहीन करना उनका उद्देश्य नहीं था। कविता में भाव प्रमुख होते हैं। छंद उनका अनुगमन करते हैं। अतः तुकों से छंद को मुक्ति दिलाई गई और भावावेग प्रधान हो उठा। निराला ने भावों के अनुकूल छंदों के निर्माण में अपना कदम बढ़ाया। महादेवी ने हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुकूल मात्रिक छंदों का ही प्रयोग किया है। इनके छंदों में पदों का विन्यास भाव लय

के अनुरूप हुआ है। महादेवी ने छायावाद के अन्य कवियों की तरह लोक प्रचलित गीतों को अपनाया। डॉ॰ नामवर सिंह के अनुसार उन्होंने सोलह मात्राओं वाले चरण के एक गीत को अपनाकर उसके एक चरण को टेक और उसके द्विगुणित रूप को अंतरा बनाकर बहुत से गीत लिखे जो अत्यन्त लोकप्रिय हुए।

उदाहरणार्थ–

कौन तुम मेरे हृदय में?

कौन मेरी कसक मे नित मधुरता भरता अलक्षित?

कौन प्यासे लोचनों में घुमड़ घिर झरता अपरिचित?

स्वर्ण स्वप्नों का चितेरा नींद के सूने निलय में!

कौन तुम मेरे हृदय में?

छायावाद की छंद –प्रकृत्ति का स्त्रोत लोक जीवन है। इससे बहुत कुछ उपकरण लेकर छायावादी कवियों ने तरह–तरह के छंद गढ़े। पुराने छंदों को पुनः जीवित करने का काम इन्होंने किया। मध्ययुग के सीपी छंद का प्रयोग महादेवी के काव्य में हुआ है–

रजनी ओढ़े जाती थी

झिलमिल तारों की जाली

उसके बिखरे वैभव पर

जब रोती थी उजियाली

14.3.7 चित्रात्मकता

कुशल कवयित्री होने के साथ–साथ महादेवी वर्मा कुशल चित्रकार भी हैं। 'यामा' तथा दीपशिखा' के चित्र स्वयं इन्होंने ही निर्मित किये हैं जो इनकी चित्रकला के उत्कृष्ट साक्षी हैं। ये केवल कुछ शब्दों के द्वारा ही सजीव चित्र चित्रित करने में अत्यन्त सिद्धहस्त है। वसंत रजनी का सजीव चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए–

'धीरे–धीरे उतर क्षितिज से, आ वसंत रजनी!

तारकमय नव–वेणी –बंधन,

शीशफूल कर शशि का नूतन,

रश्मि–वलय सित घन अवगुंठन;

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे, चितवन से अपनी!

धीरे–धीरे उतर क्षितिज से, आ वसंत रजनी।'

इन पंक्तियों में वसन्त रजनी के रूप में नवयौवना अल्हड़ नायिका का स्वरूप साकार हो उठा है। और–

'जब कपोल गुलाब पर शिशु प्रात के

सूखते नक्षत्र जल के बिंदु से,

रश्मियों की कनक–धारा में नहा

मुकुल हँसते मोतियों का अर्घ्य दे।'

महादेवी के काव्य में चित्रात्मकता का विशेष स्थान है क्योंकि वे एक श्रेष्ठ चित्रकार भी थी। उन्होंने तूलिका यंत्रों के साथ–साथ शब्दों से भी चित्र बनाए। उनकी कृति दीपशिखा में प्रत्येक कविता की पृष्ठभूमि में एक चित्र है स्वयं उनका बनाया हुआ है। यामा में भी रेखाचित्र है। इन चित्रों में रंगों का विधान अत्यन्त कुशलता से किया गया है और काव्य, चित्र और संगीत की त्रिवेणी हैं। महादेवी कविताओं के साथ–साथ चित्रकला की भी साधना करती उनके अधिकतर चित्र दीपशिखा में प्रकाशित हुए। इसके अतिरिक्त उन्होंने बहुत से चित्रों को अपनी कविताओं रूप तथा बहुत से स्वतंत्र चित्र भी निर्मित किए। उनके चित्रों में भारतीय चित्रशैली की विशेषता और उसका प्रभाव है। अतः यह तो निश्चित है कि उनकी कविताओं में चित्रात्मकता के सौंदर्य का कारण उनकी चित्रकार प्रतिभा है उनके बिम्ब–विधान की कलात्मकता को हम इन पंक्तियों में देख सकते है–

मृदुल अंक धर, दर्पण सा सर,

आज रही निशि दृग इंदीवर!

आज नयन आते क्यों भर–भर?

ज्योत्स्नापूर्ण मनोहर वातावरण में सरोवर का शांत जल दर्पण की तरह चमक रहा है। ऐसा लगता है मानों रूप युवती दर्पण को अपनी गोद में रखकर अपने कमलनेत्रों में काजल आँज रही है। प्रियतम रवि के पथ को गुलालों से लीपा गया है एवं ध्रुव तारे दीपक को जला दिया गया है। विहँसती संध्या का उल्लास उसके दृगों से स्वर्ण पराग के रूप में झर रहा है। कल्पना विधान द्वारा भारतीय नारी के अनुष्ठान मूर्तिमान हो उठे हैं–

गुलालों से रवि का पथ लीप,

जला पश्चिम में पहला दीप,

विहँसती संध्या भरी सुहाग

हगों से झरता स्वर्ण–पराग!

महादेवी की कविताओं में बिम्ब विधान को निम्नलिखित प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है–

चाक्षुष बिम्ब

रूप विधान कविता का महत्वपूर्ण अंग है अतः काव्य में नेत्र ग्राह्य बिम्बों की प्रधानता होती है। बिम्बों के चित्रण में कवि की कल्पना, संवेदनात्मकता और सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का बहुत योगदान होता है। यहाँ चित्रण अभिधात्मक न होकर लक्षण और व्यंजना से युक्त होता है। 'वसंत रजनी' कविता में महादेवी ने वसंत रजनी को सोलह सिंगार किये हुए अभिसारिका नायिका के रूप में देखा है प्रकृति के विविध उपकरणों से सजी हुई, क्षितिज से उतरती हुई वसंत की रात उस रमणी की तरह लगती है जो शृंगार करके प्रिय से मिलने धीरे–धीरे चली आ रही है। चित्र की गत्यामकता और कमनीयता दर्शनीय है –

धीरे–धीरे उत्तर क्षितिज से

आ वसंत – रजनी

तारकमय नव वेणीबन्धन

शशि–फूल कर शशि का नूतन?

रश्मि–वलय सित धन–अवगुंठन,

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे

चितवन से अपनी।

पुलकती आ वसंत रजनी।

उनके चित्रों की वर्ण योजना लाजवाब है। रंगों का विधान और उनका संयोजन सौंदर्यबोध से युक्त है।

श्रव्य बिम्ब

ध्वनि बिम्ब का सुन्दर प्रयोग उनके काव्य में हमें मिलता है। नादात्मकता उनके काव्य की विशेषता है। ध्वन्यर्थव्यंजक शब्दों के प्रयोग से इन बिम्बों का निर्माण किया गया है जैसे–

मर्मर की सुमधुर नूपुर–ध्वनि,

अलि–गुंजित पक्षों की किंकिणि,

आस्वाद बिम्ब

छायावादी काव्य अनुभूति प्रधान है अतः छायावादी कवियों ने आस्वाद बिम्बों का प्रयोग प्रायः नहीं के बराबर किया है मधुर तथा कटु तिक्त आदि स्वाद संबंधी प्रयोग प्रायः भावना तथा चिन्तन के धरातल पर ही आए हैं। महादेवी में भी आस्वाद बिम्बों का अभाव दिखायी पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महादेवी की कविताओं में बिम्ब विधान कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। उनकी रचनाओं में चित्रात्मकता की भूरि–भूरि प्रशंसा सभी आलोचकों ने की है। पंत के साथ उनकी चित्रात्मकता की तुलना करते हुए डॉ॰ नगेन्द्र कहते हैं कि ''पंत की कला में जड़ाव और कढ़ाई है फलतः उनके चित्रों की रेखाएँ पैनी होती है। महादेवी की कला में रंग धुली तरलता है, जैसी पंखुड़ियों पर पड़ी हुई ओस में होती है।''

डॉ॰ नामवर सिंह उनके चित्र विधान की प्रशंसा करते हुए कहते हैं– ''उनकी कविताओं में जो चित्र आते हैं, वो रंगों से भरे हुए हैं। स्वयं अपने व्यक्तित्व को उपमा देते हुए उन्होंने कहा है – ''कमल दल पर किरण अंकित चित्र हूँ मैं''

भर पद गति में असल तरंगिणि

मर्मर, नूपुर ध्वनि, किंकिण, गुंजन आदि शब्दों में ध्वनि बिम्ब की योजना है

गंध बिम्ब

प्रस्तुत को संवेदनीय बनाने के लिए गंध का प्रायः अप्रस्तुत के रूप में उपयोग किया गया है जैसे–

आज ज्वाला से बरसता

क्यों मधुर घनसार सुरभित

यहाँ ज्वाला से घनसार बरस रहा है। इसी तरह चंदन, पराग, सुरभि का प्रयोग बार–बार इनकी कविताओं में हुआ है। चंदन का प्रयोग देखिए –

जिन प्राणों से लिपटा हो

पीड़ा सुरभित चंदन सी

पीड़ा मेरे मानस से

भीगे पट पर लिपटी सी

स्पर्श बिम्ब

स्पर्श चेतना कोमल पलय समीर, रेशम, मखमल, सुरभि, आदि के द्वारा व्यक्त हुई है। स्पर्श चेतना तथा कोमलता है। कल्पना के द्वारा हृदय पर पड़ने वाले इनके प्रभाव के माध्यम से हम स्पर्श का अनुभव करते है। इस दृष्टि से यह उदाहरण देखा जा सकता है –

रूपसि तेरा घन–केश–पाश !

श्यामल–श्यामल कोमल कोमल

लहराता सुरभित केश पाश!

इसी कविता में कवयित्री आगे लिखती है –

उच्छवसित वक्ष पर चंचल है

वक–पाँतों का अरविन्द हार,

तेरी विश्वासें छू भू को

बन–बन जाती मलयज बयार,

महादेवी वर्मा की चित्रात्मकता का विश्लेषण करते हुए डॉ॰ नगेन्द्र ने लिखा है–

''पन्त की कला में जड़ाव और कढ़ाव है,

अतः उनके चित्रों की रेखाऐं पैनी होती हैं। महादेवी की कला में रंगधुली तरलता है जैसी कि पंखुड़ियों पर पड़ी हुई ओस में होती है।'

14.3.8 प्रतीकात्मकता

महादेवी के काव्य में प्रतीकों का प्रयोग सौंदर्य बोध तथा कलात्मकता के साथ मिलता है। अज्ञेय के अनुसार महादेवी में भी प्रसाद की भाँति एक संकोच है और यही संकोच भाव उन्हें प्रतीकों के प्रयोग के लिए बाध्य करता है।

महादेवी वर्मा की कविता में प्रमुख प्रतीकः–

1. आध्यात्मिक प्रतीक

महादेवी की अनुभूति आध्यात्मिक है किन्तु अभिव्यक्ति लौकिक अतः अपनी अलौकिक अनुभूतियों को लौकिक प्रतीकों द्वारा वे बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त करती है। उदाहरणार्थ –

आज क्यों तेरी वीणा मौन ?

शिक्षित शिथिल तन थकित हुए कर,

स्पंदन भी भूला जाता उर,

मधुर कसक सा आज हृदय में

आन समाया कौन ?

आज क्यों तेरी वीणा मौन?

यहाँ वीणा जीवन का प्रतीक है।

2. प्रकृति संबंधी प्रतीक

प्रकृति के प्रति अत्यंत लगाव होने के कारण उनके अधिकतर प्रतीक प्रकृति से लिये गये हैं, जैसे–

घोर तम छाया चारों ओर

घटाएं घिर आई घनघोर

वेग मारूत का है प्रतिकूल

हिल जाते है पर्वत मूल

गरजता सागर बारम्बार

यहाँ अंधकार निराशा का प्रतीक है। घटाएं, पवन, सागर का गर्जन सब मन की भावनाएं हैं।

साधनात्मक प्रतीक

महादेवी का जीवन एक साधना के रूप में उनके काव्य में चित्रित हुआ है। उन्होंने ऐसे प्रतीकों का प्रयोग किया है जिनसे साधना भाव को अभिव्यक्ति मिली है। उदाहरण के लिए इन पंक्तियों का उल्लेख किया जा सकता है–

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो !

रजत शंख–घड़ियाल स्वर्ण वंशी–वीणा–स्वर,

गये आरती वेला को शत–शत लय से भर,

जब था कल कंठों का मेला,

विहंसे उपल तिमिर था खेला,

अब मंदिर में इष्ट अकेला,

इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो !

यहाँ मंदिर मानव शरीर का, दीप आत्मा का, 'शंख', 'घड़ियाल' आदि–मनुष्य की विविध भावनाओं के तथा अजिर अंतर्मन का प्रतीक है।

परंपरागत प्रतीक

कवयित्री अपने काव्य में परंपरागत और सांस्कृतिक प्रतीकों का बहुत प्रयोग करती है। 'कमल' ऐसा ही प्रतीक है–

विरह का जलजात जीवन,

विरह का जलजात।

जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज,

खिल उठे निरूपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात!

जीवन विरह का जलजात!

सौंदर्य परक प्रतीक

महादेवी ने सौंदर्य का चित्रण अनेक प्रकार से किया है। प्रकृति ने नारी रूप का सुंदर चित्र उनके काव्य में हमें मिलता है। निम्नलिखित उदाहरण में संध्या को पतिव्रता स्त्री के रूप में चित्रित किया है जो मंगलकामना का दीप जला रही है–

गुलालों से रवि का पथ लीप

जला पश्चिम में पहला दीप,

विहँसती संध्या भरी सुहाग

हेगों से झरता स्वर्ण पराग।

वेदना परक प्रतीक

उनकी कविताओं में वेदना के मूल स्वर होने के कारण प्रायः ऐसे प्रतीक आए हैं जैसे –

मैं नीर भरी दुःख की बदली !

स्पन्दन में चिर निस्पंद बसा,

क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,

नयनों में दीपक से जलते

पलकों में निर्झरिणी मचली!

भावनात्मक प्रतीक

महादेवी के काव्य में विभिन्न भावनाओं की अभिव्यंजना सुंदरता से हुई है। भावनात्मक प्रतीक के उदाहरण स्वरूप से पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं कवयित्री कहती है–

सब बुझे दीपक जला यूँ !

घिर रहा तम, आज दीपक रागिनी अपनी जगा लूँ !

यहाँ 'दीपक' आत्मा के प्रतीक रूप में चित्रित हुआ है। तम अज्ञानता का प्रतीक है।

आत्मचेतना संबंधी प्रतीक

छायावाद में प्रकृति चेतन सत्ता के रूप में चित्रित हुई हैं। आत्मचेतना संबंधी प्रतीकों में शलभ, वीणा, तार, सरिता आदि प्रमुख हैं।

महादेवी के प्रिय प्रतीक

महादेवी के काव्य में कुछ प्रतीक बहुत सुंदरता से अभिव्यक्त हुए हैं। वे उनकी कविता के मूल भावों के निहितार्थों को व्यक्त करने में सफल हुए हैं।

इनमें दीपक एवं बादल प्रमुख हैं –

दीपक

अंधकार में जलता हुआ दीपक बार–बार उनकी कविताओं में आता है। महादेवी को दीपक बहुत प्रिय है। उनके एक काव्य संग्रह का नाम भी है 'दीपशिखा'। अंधेरे में जलता हुआ दीपक, जल–जलकर औरों की राह रोशन करता

है परन्तु स्वयं दीपक तले अंधेरा ही रहता है। दीपक का स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देने का यह गुण कवयित्री को बहुत भाया करता है। इसलिये उनकी कविता में तरह–तरह से बार–बार दीपक का उल्लेख आया है। वे कहती हैं–

मधुर मधुर मेरे दीपक जल !

युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,

प्रियतम का पथ आलोकित कर !

महादेवी स्वप्नदृष्टा है। अपने स्वप्न को दूसरों की आंखों में पहुँचाना चाहती हैं। कहती है 'जब यह दीप थके तब आना' जब तक दीपक जल रहा है – सपने भी एक से दूसरे की आँखों से पलते जा रहे हैं। कहती हैं–

जल यह दीप थके तब आना

यह चंचल सपने भोले हैं,

दृगजल पर पाले मैंने मृदु,

पलकों पर तोले हैं

दे सौरभ से पंख इन्हें सब नयनों में पहुँचाना।

बादल

महादेवी को बादल बहुत प्रिय है। छायावादी कवियों को वर्षाऋतु तथा बादल से विशेष प्यार है। ग्रीष्म ऋतु में जब धरती तप उठती है, चारों ओर अग्नि की लपटों से व्यक्ति झुलस जाता है तब बादल छाते हैं और बरसकर सबको तृप्त कर देते हैं, धरती हरी–भरी हो उठती है, नवजीवन का संचार हो जाता है। महादेवी बादल से अपने को जोड़कर देखती है और अपना परिचय उसी रूप में देती है–

मैं नीर भरी दुख की बदली !

मै क्षितिज–भृकुटि पर घिर धूमिल,

चिन्ता का भार बनी अविरल,

रज–कण पर जल–कण हो बरसी

नव जीवन–अंकुर बन निकली !

यद्यपि छायावादी काव्य में प्रतीकों का बाहुल्य है, तथापि महादेवी ने जिस प्रकार से अपने काव्य में प्रतीकों की योजना की है, यह इनकी निजी विशेषता ही समझी जायेगी। बदली, सांध्यगगन, सरिता, दीप, सजल नयन, रात्रि,

गगन, जलधारा, अन्धकार, ज्वाला पंकज, किरण, स्पप्न, विद्युत, प्रकाश आदि इनके प्रतीकों में प्रमुख हैं। इन प्रतीकों के अर्थ भी इनके अपने ही हैं। यथा –

''मैं नीर भरी दुख की बदली।'

यहाँ बदली का अर्थ है करुणा से परिप्लावित हृदय वाली।

'प्रिय ! सांध्यगगन मेरा जीवन !'

यहाँ सांध्यगगन का अर्थ है लौकिक के प्रति विराग और अलौकिक के प्रति अनुराग!

''मैं सरित विकल!

तेरी समाधि की सिद्धि अकल !'

यहाँ सरित (सरिता) का अर्थ है करुणा और प्रेम की वाहिका।

'दीप मेरे जल अकम्पित

घुल अचंचल।'

यहाँ दीप का अर्थ है साधना में तल्लीन आत्मा।

इस प्रकार गिने–चुने प्रतीकों को अपनाकर तथा उनमें नवीन अर्थ भरकर कवयित्री ने अपनी प्रतीक योजना को समृद्ध और भावों को प्रभावशाली बना लिया है।

14.4 सारांश

महादेवी अत्यन्त जागरूक कलाकार हैं। छायावाद के कवियों में पन्त को छोड़कर महादेवी के समान ऐसा दूसरा कवि नहीं है जो अपनी काव्य–कला के प्रति इतना सजग रहा हो। एक आलोचक का यह कथन सत्य ही है कि महादेवी के काव्य में स्वर–तन्त्रियों पर गुम्फित कोमल पदावली रेशम पर मोती की तरह ढुलक जाती है। डॉ॰ नगेन्द्र ने इनकी काव्य–कला का मूल्यांकन इन शब्दों में किया है– 'महादेवी' के काव्य में हमें छायावाद का शुद्ध अमिश्रित रूप मिलता है। छायावाद के अन्तर्मुखी अनुभूति, अशरीरी प्रेम जो बाह्य तृप्ति न पाकर अमांसल सौन्दर्य की सृष्टि करता है, मानव और प्रकृति के चेतन संस्पर्श, रहस्य–चिन्तन, तितली के पंखों और पंखुडियों से चुराई हुई कला और इन सबसे ऊपर स्वप्न सा पूरा हुआ एक वायवी वातावरण – ये सभी तत्व जिसमें घुलते मिलते हैं, वह है महादेवी की कविता।

14.5 कठिन शब्द

रागात्मकता, अंतर्मुखता, अभिव्यंजना, अमूर्त, अभिसारिका, नादात्मकता, कर्कश, रूढ़िबद्धता, उपहास, प्रवर्तित

14.6 अभ्यासार्थ शब्द

प्र०1. छायावादी काव्यधारा में महादेवी के योगदान को स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०2. महादेवी की काव्य कला का विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०3. महादेवी की काव्यभाषा का मूल्यांकन कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०4. महादेवी के काव्य सौन्दर्य पर प्रकाश डालिये।

_____

_____

_____

प्र०5. महादेवी की प्रतीक योजना की सार्थकता पर विचार डालिये।

_____

_____

_____

प्र०6. महादेवी के काव्य में कल्पनाशीलता के वैशिष्ट्य पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०7. महादेवी के बिम्ब–विधान की कलात्मकता की समीक्षा कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०8. महादेवी की छंद–योजना की विशेषताँए बताइए।

_____

_____

_____

प्र०9. महादेवी के काव्य में अप्रस्तुत–विधान के सौन्दर्य का विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

14.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. महादेवी : नया मूल्यांकन– डॉ॰ गणपति चन्द्र गुप्त, भारतेन्दु भवन लोअर बाज़ार, शिमला।
2. महादेवी– डॉ॰ दूधनाथ सिंह
3. महादेवी– डॉ॰ जगदीश गुप्त
4. महादेवी : चिन्तन व कला – डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान
5. छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन – डॉ॰ विमल
6. छायावाद– सं॰ डॉ॰ उदयभानु सिंह
7. महादेवी– डॉ॰ शची रानी मुर्टू

.....